सहजानन्द शास्त्रमाला

शीलपाहुड प्रवचन

रचयिता—
अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री
पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी
"सहजानन्द" महाराज

सम्पादक—
सुमेरचन्द जैन
१५ प्रेमपुरी, मुजफ्फरनगर

प्रकाशक—
खेमचन्द जैन, सर्राफ
मन्त्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ (उ० प्र०)

प्रति ०००

सहजानन्द जयन्ती
सन् [illegible]

लागत १।।) रु०

श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके संरक्षक

(१) श्रीमान् लाला महावीरप्रसाद जी जैन बैंकर्स, सदर मेरठ
(२) श्रीमती फूलमाला जी जैन ध० प० श्री ला० महावीरप्रसादजी सदर मेरठ
(३) श्रीमान् लालचंद विजयकुमार जी जैन सर्राफ सहारनपुर
(४) श्रीमती शशिकान्ता ध० प० श्री धनपालसिंहजी सर्राफ सोनीपत
(५) ,, सुवटी देवी जैन ध० प० श्री चिरंजीलाल जी जैन सरावगी गिरिडीह

नवीन स्वीकृत संरक्षक

(६) श्रीमती जमना देवी जैन ध० प० श्री भवरीलालजी जैन पाण्ड्या झूमरीतिलैया
(७) ,, रहती देवी ध० प० श्री विमलप्रसाद जी जैन मसूरपुर
(८) ,, श्रीमती जैन ध० प० श्री नेमिचंदजी जैन, प्रेमपुरी मुज०
(९) ,, सुफलमाला जैन ध० प० श्री कैलाशचंदजी बजाज मुज०
(१०) श्रीमान् शिखरचंद जियालाल जी जैन एडवोकेट कुंजगली मुज०
(११) श्रीमान् चिरंजीलाल फूलचंद बैजनाथ जी जैन बडजात्या नई मंडी, मुजफ्फरनगर

भारतवर्षीय वर्णी जैन साहित्यमंदिरके संरक्षक

(१) श्रीमती राजो देवी जैन ध० प० स्व० श्री जुगमंदरदासजी जैन आढती, सरधना
(२) ,, सरला देवी जैन ध० प० श्री ओमप्रकाशजी दिनेश वस्त्र फैक्टरी, सरधना

सहजानन्द-साहित्य-सूक्ति

वस्तु सामान्यविशेषात्मक है, द्रव्यपर्यायात्मक है। अत स्याद्वाद द्वारा समस्त विवाद विरोध समाप्त कर वस्तुका पूर्ण परिचय कीजिए और आत्मकल्याणके अनुरूप नयोको गौण मुख्य करके अभेदपद्धतिके मार्गसे आत्मलाभ लीजिए।

सम्पादकीय

धर्मप्रेमी बन्धुवो ! आपके करकमलोमे जो ग्रन्थ आ रहा है वह पूज्य श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यविरचित शीलपाहुडपर पूज्य श्री गुरुवर्य्य अध्यात्मयोगी सहजानन्द (मनोहर जी वर्णी) महाराज द्वारा हुए प्रवचनोका ग्रंथ है। इसके मूल गाथारचयिता पूज्य श्री कुन्दकुन्दाचार्यका नाम मंगलपाठ श्लोकमे लिया जाता है। ये अपने समयमें महान् विवादावसरके कालमे दिगम्बर जैनधर्मके आधारस्तम्भ थे। अध्यात्मग्रंथोमे समयसार प्रवचनसार नियमसार पचास्तिकाय दर्शनपाहुड सूत्रपाहुड आदि अनेक ग्रथ श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवके हैं उन्हींमें यह शीलपाहुड ग्रंथ है। इस मूल ग्रन्थपर पूज्य श्री अध्यात्मयोगी सहजानन्द महाराजने तत्वोके तथ्य रहस्यका प्रतिपादन करते हुए प्रवचन किये है।

आत्माके अनादि अनन्त चैतन्यरूप शीलस्वभावको जान कर विषय कषायरूप कुशीलसे उपयोगको हटाना और इस शीलमें अपने उपयोगको लगाना शीलपालन बताया गया है। इस पारमार्थिक शीलपालनसे मोक्षमार्गके अनुकूल व्रत तप सयम ध्यान आदि सब सम्यक् सिद्ध होते हैं। शीलके बिना मुक्ति प्राप्त नही होती। शीलकी रक्षा करने वाले सम्यक्त्वविशुद्ध दृढ चारित्रवान विषयोसे विरक्तचित्त वाले भव्य पुरुषों का निर्वाण होना सुनिश्चित है।

पूज्यश्री सहजानन्दजी महाराजने समयसार, प्रवचनसार,

नियमसार, पंचास्तिकाय, प्रमेयकमलमार्तण्ड, अष्टसहस्री, पंचाध्यायी, मोक्षशास्त्र आदि ६० ६५ आर्ष ग्रंथोपर प्रवचन किये तथा स्वरचित सहजानन्दगीता, अध्यात्मसूत्र, अध्यात्मसहस्री आदि ग्रंथोपर भी प्रवचन हुए जो शोर्ट हेण्डमे अक्षरशः संकलित हुए। समस्त प्रवचनग्रथ २८० हैं इनके अतिरिक्त २७५ ग्रंथ स्वतंत्र विरचित हैं जिनमे अभी ५०-५५ ग्रंथ अपूर्ण हैं। कुल ५५५ ग्रन्थोकी रचना गुरुवर्य्य सहजानंद जी महाराजके द्वारा हुई है। समस्त ग्रंथ नयविभागपूर्वक विषयके स्पष्ट प्रकाशक है एव अभेदशैलीसे अनुभवके प्रयोजक हैं, साथ ही अनेक ग्रन्थ जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड, लब्धिसार, क्षपणसार, धवला आदि महान् ग्रन्थोकी कुञ्जीरूप हैं। अध्यात्मसिद्धान्त, अध्यात्मसूत्र, अध्यात्मसहस्री जैसे ग्रंथोंके अध्ययनसे निर्बाध स्पष्ट वस्तुस्वरूप व अध्यात्मतत्त्व प्राप्त होता है।

महाराजश्रीने जो ज्ञानदान दिया है उससे समाज उऋण नही हो सकता। जिज्ञासु बन्धुवोंसे निवेदन है कि वे सहजानदसाहित्यका अध्ययन करके अलौकिक सत्य आनन्द प्राप्त करें॥ विज्ञेष्वलमधिकेन॥

१५ प्रेमपुरी, मुजफ्फरनगर

सुमेरचंद जैन

श्लोक-अनुक्रम

विषय-सूची

गाथा नं० | विषय | प्रारम्भ पृष्ठ

—:o:—

* आत्म रमण *

मैं दर्शनज्ञानस्वरूपी हू, मैं सहजानन्दस्वरूपी हू ।। टेक ।।

हू ज्ञानमात्र परभावशून्य, हू सहज ज्ञानघन स्वय पूर्ण ।
हू सत्य सहज आनदधाम, मैं सहजानद०, मैं दर्शन० ।।१।।

हू खुदका ही कर्ता भोक्ता, परमे मेरा कुछ काम नही ।
परका न प्रवेश न कार्य यहाँ, मैं सहजा०, मैं दर्शन० ।।२।।

आऊ उतरू रम लू निजमे, निजकी निजमे दुविधा ही क्या ।
निज अनुभव रससे सहज तृप्त, मैं सहजा० मैं दर्शन० ।।३।।

शीलपाहुड प्रवचन

रचयिता—अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री
पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी
"सहजानन्द" महाराज

वीरं विसालणयण रत्तुप्पलकोमलस्समप्पावं ।
तिविहेण पणमिऊणं सीलगुणाणं णिसामेह ॥१॥

(१) विशालनयन वीरप्रभुको नमस्कार कर शीलपाहुड ग्रन्थ बनानेका सकल्प—यह कुन्दकुन्दाचार्य द्वारा विरचित शीलपाहुड नामका ग्रथ है। यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य मगलाचरण पूर्वक इस ग्रन्थमे क्या कहेगे, उसका प्रतिज्ञापन कर रहे है। मै वीर प्रभुको नमस्कार करके शील गुणोको कहूगा। इस ग्रथ मे शील और गुणोका वर्णन है। शीलके मायने है आत्माका स्वरूप स्वभाव और उस स्वभावकी दृष्टि रखना, यह तो है शील और गुणके मायने है, उस आत्मस्वभावको पानेके लिए जो आन्तरिक परिणति चलती है, ज्ञानरूप वह है गुण। तो शील और गुणोके वर्णनके प्रसगमे शील गुणसे परिपूर्ण यहाँ वीर प्रभुको नमस्कार किया है जिसके दो विशेषण दिए है—महावीर भगवान विशालनयन हैं। जिसके नेत्र बड़े हैं उसे कहते है विशालनयन। नेत्रोका बहुत बड़ा होनेसे कोई

प्रशंसाका अधिक सम्बंध नही है। यद्यपि छोटे नेत्र होना यह पुण्यका सूचक नही, नेत्र सही परिमाणमे होता है और उसे विशाल कहते हैं, पर यहाँ विशालनयन कहनेसे कोई आध्यात्मिक अर्थ गर्भित है। जिस ज्ञाननेत्रके द्वारा भगवान जानते हैं वह ज्ञानरूपी नेत्र विशाल है। तब कोई पूछता कि कितना विशाल है भगवानका नयन ? तो जितना लोक और अलोक है उतना बडा भगवानका नेत्र है। और जब भगवानका एक नेत्र इतना बडा है तो दूसरा भी बडा होगा ?····नही, दो नेत्र है ही नही भगवानके। एक केवलज्ञानरूपी नेत्र है। भगवानका एक नाम है त्रिनेत्र। जिसके तीन नेत्र हो वह है जिनेन्द्र। वैसे नेत्र क्या कहलाते ? तो दो नेत्र जो शरीरमे लगे है वे हैं, क्योकि अरहत भगवानके अभी शरीर साथ लगा हुआ है, और तीसरा नेत्र है केवलज्ञान। तो केवलज्ञानरूपी नयन जिसके विशाल है ऐसे महावीर प्रभुको नमस्कार करके, विशालनयन विशेषणका यह अर्थ है—

(२) रक्तोत्पलकोमलसमपाद वीर प्रभुको नमस्कार कर शीलपाहुडकी रचनाका प्रारम्भन—इस गाथामे वीरप्रभुका दूसरा विशेषण दिया है कि लाल कमलके समान कोमल जिनके चरण हैं अर्थात् एक पुण्यवानीकी दृष्टिसे शरीरको जो शोभा है उसको लक्ष्य लेकर कहा है। पैर भी लाल हैं, यह तो एक सामान्य अर्थ है, पर इस हो मे एक आध्यात्मिक अर्थ

है--रक्त मायने लाल भी है और रक्त मायने होता है रागादिक विकारसे युक्त। ऐसा जो आत्मपरिणाम है उसे भी रक्त कहते हैं। और उसको उत्पल कर दिया मायने दूर कर दिया, उखाड दिया, अतएव जिसके कोमल वचन हैं अर्थात् रागके दूर होनेसे वीतरागता आनेके कारण जिसकी दिव्यध्वनि कोमल हित मित मधुर है, जिसको सुनकर प्राणी अपने सकट दूर करते है। तो ऐसे महावीरप्रभुको नमस्कार करके तीनो योगसे मैं प्रणाम करता हू। मनकी सम्हाल करके, वचनकी सम्हाल करके, शरीरकी सम्हाल करके मैं प्रणाम करता हूं और प्रणाम कर शील गुणका वर्णन करता हू। वास्तविक नमन आत्मस्वरूपका बोध हुए विना नही हो पाता। आत्मस्वरूपका परिचय हुए बिना तो भगवानके स्वरूपका भी ज्ञान नही होता। भले हो शब्दोसे कहते रहे और कुछ कुछ पर्यायकी भी महिमा ज्ञात होती रहे, वे वीतराग है, रागद्वेषरहित है, सर्वज्ञ हैं, पर उन सबकी भावभासना तब तक न हो पायगी जब तक आत्माके, शीलका परिचय न हो। आत्माके स्वभावको जब तक न समझ लिया जाय तब तक प्रभुकी प्रभुता भी भली-भांति नही ज्ञात हो सकती। आत्माका स्वभाव ही है यह कि वह जो सत् है, सबको जाने, सर्व सत् उसमे झलके, ऐसा मेरा स्वरूप ही है, और उपाधि जब झलक गई, आवरणकर्म दूर हो गये तो यही स्वभाव, यही शील पूर्णरूपमे प्रकट हुआ है, अत. जिस

शीलगुणके प्रतापसे भगवान महावीर स्वामी संकटहीन हुए हैं उनको प्रणाम करके मैं शीलगुणका वर्णन करूँगा।

सीलस्स य णाणस्स य णत्थि विरोहो बुधेहिं णिद्दिट्ठो।
णवरि य सीलेण विणा विसया णाणं विणासंति ॥२॥

(३) ज्ञान और शीलमे विरोधाभाव व एकत्र अवस्थान—इस गाथामे यह कह रहे है कि शील और ज्ञान इन दोनोंमें विरोध नही है, ऐसा ज्ञानीजनोंने बताया है। जहाँ शील हो वहाँ ज्ञान न हो, जहाँ ज्ञान हो वहाँ शील न हो ऐसा नहीं है। ज्ञान और शील एक जगह रहते हैं। शीलके बिना विषय कषाय आदिकके परिणाम ज्ञानको नष्ट करते हैं अर्थात् ज्ञानको मिथ्यात्व रागद्वेषमय बनाते हैं। यहाँ शीलका अर्थ है प्रकृति, स्वभाव, आदत और ज्ञानका अर्थ है जानना। ज्ञान सब जीवो मे पाया जाता है और शील शक्तिसे सबमे पाया जाता है और व्यक्तिकी अपेक्षा याने प्रकटपनेकी अपेक्षा यदि रागद्वेषमय ज्ञान है तो वहाँ भी शील है, मगर वह शील कुशील है। जहाँ राग-द्वेष अज्ञानभाव नहा है वहाँ शील है, वह सुशील है। तो सामान्य रूपसे देखें तो ज्ञान भी सदा रहता है और शील भी सदा रहता है। भले ही वह शील एक कुशीलके रूपमे प्रकट है, पर ज्ञान भी वहाँ है और कुशील भी है, यो भी वहाँ अज्ञानदशामे भी शीलका और ज्ञानका विरोध नही रहा। जब ज्ञानदशा रही, रागद्वेषसे रहित परिणाम हुए वहाँ ज्ञान

है, शील है, इसमे तो किसीको सदेह भी नही हो सकता। सो जब अज्ञान मिथ्यात्व रागद्वेषका सम्बन्ध है और उस समयमे कुज्ञान ज्ञानकी जो स्थिति है तब उसके साथ शील आदत कुशीलके रूपमे चल रही है और जब निरुपाधि हो जाता है ज्ञान, तब वहाँ यह शील पूर्ण शील स्वभावके रूपमे प्रकट होता है। यो ज्ञानस्वभावमे अनादि कर्मके संयोगके कारण जो मिथ्यात्व रागद्वेषरूप परिणाम है सो यह ज्ञानकी प्रकृति बन गई कुशीलरूप और जब भेदविज्ञानके प्रतापसे सर्व पदार्थोंको सही भिन्न-भिन्न रूप जाना तो वह सुशीलरूपमे प्रकट है। कुशीलका नाम है संसारप्रकृति। अज्ञानअवस्थामे यह ज्ञान ससारप्रकृति के रूपमे चलता है। और ज्ञान हो जानेपर यह ज्ञान मोक्षमार्ग की प्रकृतिरूपसे चलता है, फिर भी कुशीलकी मुख्यता कहीं नही की जाती। ध्यानके लिए, प्रयोगके लिए, मननके लिए शीलका मायने स्वभाव सुशीलका ही आदर होता है। तो यहाँ अध्यात्मदृष्टिसे, मोक्षमार्गको दृष्टिसे शील नाम है आत्माके स्वभावका।

(४) **आत्माको ज्ञानमात्र निरखकर परखनेमें ज्ञानशीलता का दर्शन**—आत्माका स्वभाव है ज्ञानमात्र। ज्ञानमात्र स्वरूप मे ज्ञानका ही काम चलते रहना, ज्ञानमात्र ज्ञातादृष्टा रहे, यही है शीलका पालन। तो आत्माके इस शीलका याने स्वभावका इसमे वर्णन होगा और शीलके प्रति बुद्धि रखनेसे जो गुण जगते हैं, कार्य होते हैं, परिणाम होते हैं वे कहलाते है

गुण। तो शीलका और गुणोंका इस ग्रथमे वर्णन किया जायगा। इस आत्माको ज्ञानमात्र रूपमे लखना है, चाहे कुछ भी अवस्था हो, ससारमे भी ज्ञानमात्रके रूपसे आत्माको देखिये, ज्ञानकी स्थितिमे भी आत्माको ज्ञानरूपसे देखें, तो जो गडबडी है, रागद्वेषादि विकार हैं वे सब कुछ अलग नही जँचे, किन्तु ज्ञानकी ही ऐसी ससारप्रकृति हुई है। तो यही ससारप्रकृति कुशील कहलाती है। तो हर स्थितियोमे आत्मा ज्ञानमात्र है, ज्ञान ही जिस तरहका उपयोग बनाता है, उस प्रकारके ज्ञान परिणाममे परिणमता है, सो अज्ञान अवस्थामे यह ज्ञान ही क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, रागद्वेष, ये सारी बातें ज्ञानमे पर्यायमे पडी हुई हैं और जब यह उपाधि नही रहती, केवल आत्मा ज्ञान-ज्ञानमात्र रहता है तो यह ज्ञान फिर अपने सही शीलसे, सही प्रकृतिसे चलने लगता है। सो ऐसा शील और गुण ये दोनो साथ साथ हर एकमे पाये जाते है। यहाँ साधुके शील और गुणका वर्णन किया जा रहा। सो इस ग्रथ मे उन शील और गुणोका वर्णन चलेगा। यह अष्टपाहुड नाम से प्रसिद्ध है, छोटे-छोटे पाहुड होनेसे एक जगह उनका वर्णन किया गया है। उन ८ पाहुडोमे से यह शीलपाहुड अतिम पाहुड है। जैसे समयसारमे ७ तत्त्वोका वर्णन करनके बाद सर्वविशुद्ध ज्ञानाधिकारको आत्माके स्वभावपर, एकत्वपर दृष्टि करायी गई, क्योकि जो प्रयोजन होता है सो उस प्रयोजन

के बारेमे बहुत कुछ वर्णन बीचमे किया जाता है, पर उस विशाल वर्णनके बाद फिर प्रयोजनकी बात थोड़े शब्दोमे कही जाती है। तो ऐसे ही मोक्षमार्गके प्रसगमे बहुत कुछ वर्णनके बाद अन्तमे आत्माके शील स्वभावका वर्णन किया गया है। अब इस शील और गुणोंके विषयमे आगे विशेष विवरण चलेगा।

दुक्खेणेयदि णाण णाणं णाऊण भावणा दुक्ख।
भावियमई व जीवो विसयेपु विरज्जए दुक्ख ॥३॥

(५) ज्ञानकी दुर्लभता व ज्ञानसे भी अधिक ज्ञानभावना की दुर्लभता—प्रथम बात तो यह है कि ज्ञानका पाना ही बडा कठिन है। ससारमे कितने जीव है? मनुष्योकी सख्या तो सभी गतिके जीवोसे थोडी है। कुछ मनुष्योको छोडकर, कुछ ऊँचे देवोको छोडकर प्राय सर्वत्र अज्ञानदशा छायी है, भले ही कुछ सम्यग्दृष्टि सभी गतियोमे होते है, मगर ज्ञानकी विशेषता सब जगह नही मिलती। देखो यह कभी एकेन्द्रिय था तो उसका कितनासा ज्ञान? दोइन्द्रिय हुआ, तीनइन्द्रिय, चारइन्द्रिय, पाँच इन्द्रिय वाला हुआ, असज्ञी रहा तो वहाँ कितना सा ज्ञान? मनुष्योमे भी कौन कितना ज्ञान रखता है, ज्ञानकी प्राप्ति बहुत ही दुर्लभ है। इसके विषयमे तो कहा है—'धन कन कचन राजसुख, सबहिं सुलभ कर जान। धन हो, स्वर्ण हो, चाँदी हो, वैभव हो, राजपाट हो, कुछ भी अन्य बात हो

वह सब सुलभ है। 'दुर्लभ है संसारमे एक यथारथ ज्ञान।' ससारमे यदि कोई दुर्लभ है तो यथार्थ ज्ञान दुर्लभ है। ज्ञानो मे भी दुर्लभ ज्ञान यथार्थ ज्ञान है। जैसा जो पदार्थ है वैसा ही वह ज्ञानमे आये तो वह अशान्त नही रहता। सीधा सच्चा मार्ग मिलता है, इस कारण यथार्थ ज्ञानका पाना बहुत दुर्लभ है। ज्ञान भी प्राप्त कर लिया तो उसकी भावना करना बडा कठिन है। जैसे आत्माके विषयमे कुछ ज्ञान बनाया यह मैं अमूर्त हू, अपने स्वरूपास्तित्व मात्र हू, इसका अन्य पदार्थोंसे कुछ भी सम्बन्ध नही, इसका सर्वस्व यह ही है, ज्ञान कर लिया, पर ऐसी भावना बनी रहे, ऐसा ख्याल, ऐसी दृष्टि बनी रहे, उपयोग इस निज सहज यथार्थ स्वरूपकी ओर रहे, यह बात बडी कठिन है। जब तक ज्ञानभावना नही बनती है तब तक पाये हुए ज्ञानका विश्वास नही रहता। योग्य क्षयोपशम है, पर वह रहेगा, बढेगा, प्रगतिशील होगा इसका कुछ विश्वास नही। कारण यह है कि ज्ञानभावनाके द्वारा ही ज्ञानका और विकास बढ़ता है, ज्ञानभावना जिसके नही है तो एक जानकारी मात्रमे वह उन्नति न कर पायगा। तो कभी जान भी लिया, ज्ञान भी पाया तो अब ज्ञानकी भावना बनाये रहना बहुत कठिन है। आज जितना ससारमे दुःख है मनुष्योको सभीको वह ज्ञानभावनाके न होनेसे कष्ट है। कष्ट तो भ्रमसे चल रहा है। बाहरी पदार्थ मेरे कुछ नही हैं, फिर भी बाह्य

पदार्थोंसे ही लगाव बना रहे तो यह प्राकृतिक बात है कि उसको कष्ट ही होगा। भ्रम समाप्त तो कष्ट समाप्त। ज्ञानकी यथार्थता अनुभवमे आये, फिर वहाँ कष्टका क्या काम ? सो ज्ञानभावना बडो कठिनाईसे प्राप्त होती है।

(६) **ज्ञान और ज्ञानभावनाकी दुर्लभतासे भी अधिक विषयविरक्तिकी दुर्लभता**—किसो जीवने कुछ ज्ञान भी कर लिया, ज्ञानकी कुछ भावना भी बनती है, लेकिन विषयोंसे विरक्ति पाना बहुत कठिन बात है, यो कहो कि ज्ञान और ज्ञानभावनाका फल है विषयोसे विरक्त हो जाना। सो विषयो से विरक्ति जब तक न मिले तब तक ये सब लाभ भी कुछ लाभ नही है। हाँ इतना लाभ अवश्य है कि ज्ञानभावना है तो उसका संस्कार रहेगा तो आज नही तो कभी हम उद्धार का मार्ग पा लेंगे। पर जब भी उद्धारके मार्गमे बढेंगे तो विषयोसे विरक्तिपूर्वक ही बढ़ सकते हैं। जब तक जीवको भेदविज्ञान नही हुआ तब तक उसका मन स्वच्छंद डोलता है, बडी-बडी साज-शृङ्गार शोभाकी चीजोमे वह मन बहलाता है। वह शान्तिका मार्ग नही पा सकता। तो सर्व श्रेयोमे श्रेय बस यही सहज आत्मस्वरूप है जो सहजसिद्ध है, जहाँ बनावट रच नही है, ऐसा कारणसमयसाररूप अपना स्वभाव अनुभवना यह है बहुत उच्च काम इस जीवनमे। तो ज्ञान पाया, ज्ञानकी भावना भी पायी, किन्तु विषयोसे विरक्ति पाना बहुत

कठिन है । तो हमे शिक्षा यह लेना है कि अपनेमे उत्कृष्ट ज्ञान-भावना बनायें और विषयोसे विरक्त होनेका लक्ष्य बनाकर उस ज्ञानभावनासे अपनेको पवित्र बनायें ।

ताव ण जाणदि णाणं विसयवलो जाव वट्टए जीवो ।
विसए विरत्तमेत्तो ण खवेइ पुराइयं कम्मं ॥ ४ ॥

(७) विषयानुराग रहते हुए यथार्थ ज्ञान होनेकी असंभवता—जब तक इस जीवपर विषयका बल बढा-चढ़ा है तब तब तक उस जीवमे शुद्ध सही ज्ञानकी वृत्ति नही होती । कार्य करना है अपने स्वरूपमे मग्न होनेका । और यह कार्य ज्ञान द्वारा ज्ञानको ज्ञानमे बनाये रहनेके द्वारा साध्य है । आत्ममग्नता अन्य विधिसे नही होती । जो अनेक प्रकारके तपश्चरण बताये हैं वे तपश्चरण विषय कषायकी खोटी वासनाओको नष्ट करनेके लिए हैं । आत्ममग्नता तो ज्ञानमग्नतासे ही सभव है । उसका कोई दूसरा उपाय नही है । चरणानुयोगमे जितने भी बाह्यक्रियायें हैं उनके किए बिना आगे बढ न सके यह बात तो ठीक है, किन्तु जो क्रियावोपर ही ऐसी दृष्टि रखे है कि ऐसी चेष्टाके बलपर मैं मोक्षमार्गमे बढूंगा तो वह नही बढ सकता । तो ज्ञानमे ज्ञान ही समाया हो यह स्थिति चाहिए आत्मकल्याणके लिए, सो जिसका चित्त, जिसका उपयोग विषयवासनामे ही बर्तता रहे उसको यह ज्ञान कभी प्राप्त नही हो सकता । सो जब तक विषयकी ओर बरजोरी इस जीवपर

चल रही है तब तक वह जानता नही है, उसका ज्ञान सही दिशामें नही है ।

(८) **ज्ञानानुभवशून्य अज्ञानी जनकी बाह्यविषयविरक्तिमात्रसे कर्मविनाशकी असंभवता**—कोई विषयसे विरक्तमात्र रहे, इतनेसे कोई पूर्वबद्ध कर्मका क्षय नही कर सकता । शुद्ध ज्ञान साथमे हो तब कर्मोंका क्षय होता है । अज्ञानसे भी तो विषयोसे भी तो कषायोसे भी तो हटना है । जहां यह श्रद्धा आयी, दृष्टि बनी कि इन पञ्चेन्द्रियके विषयोको छोडनेसे, त्यागनेसे धर्म होता है तो उसकी दृष्टि बाह्य विषयो तक रही, बाह्य विषयोसे हटने तक रही । अभी वह मोक्षमार्गका पात्र नही है । उसके यह चित्तमे नही है कि इन इन्द्रियविषयोसे हटना किस कार्यके लिए करना पडता है । बाह्यसे तो हट गया विषयोसे, मगर विषयोसे हटनेका प्रयोजन जब तक अनुभवमे न उतरे तब तक वह कर्मोंका क्षय नही कर सकता । जीव उपयोग स्वरूप है और यह उपयोग क्रमसे चलता है । छद्मस्थका उपयाग एक साथ सर्व पदार्थोंको नही जान पाता । तो जब छद्मस्थका उपयोग क्रमसे चलता है और उसका उपयोग किसी इन्द्रियके विषयमे लगा हुआ है तो जहां उपयोग लगा है उस ही रूप वह आत्मा होता है । तो जब विषयोकी ओर उपयोग लगा हो तो वह आत्मा भी अपवित्र है । विषयो की ओर उपयोग जिसका लगा है उसका ज्ञानस्वरूपकी ओर

उपयोग नही लगा यह तो बिल्कुल सिद्ध है। सो जिसपर विषयबल चढा हुआ है वह ज्ञानस्वरूप अतस्तत्त्वको नही पा सकता। सो जब विषयोमे चित्त है तब ज्ञानकी वृत्ति नही जग रही है, क्योकि विषयोमे चित्त रहेगा तो नियमसे विषय के साधनोपर तो स्नेह जगेगा और विषयोकी बाधावोपर द्वेष जगेगा। तो जहाँ आचरण ही बिगडा, रागद्वेष ही बन गए तो वहाँ ज्ञान अपने सही रूपमे नही ठहर सकता। यह एक धर्ममार्गमे मूल कार्य है। तो अपने यथार्थस्वरूपको जान लें आकाशकी तरह अमूर्त निर्लेप, किन्तु चैतन्यगुणमय यह आत्म-तत्त्व है, इसका जिसने ज्ञान नही किया, अनुभव नही किया तो वहाँ उपयोग बाहरी पदार्थोमे ही रहेगा। सो जिसका उप-योग विषयमे रम रहा है, ज्ञानकी ओर नही है तो जो विषयो को न त्याग सके वह तो कहलाता है वहाँ कुशील और जो विषयोको त्यागकर ज्ञानकी भावना करेगा वह कहलायगा सुशील।

णाणं चरित्तहीणं लिंगग्गहणं च दंसणविहूणं।
संजमहीणो य तवो जइ चरइ णिरत्थय सव्वं ॥५॥

(६) चारित्रहीन ज्ञानकी निरर्थकता—ज्ञान तो चारित्रहीन हो और निर्ग्रन्थ दिगम्बर भेषका ग्रहण करना, सम्यक्त्वरहितके हो और बडे-बड़े दुर्धर तप सयमसे रहित हो तो ऐसे पुरुषका जो कुछ भी आचरण है वह सब निरर्थक

है। ये तीन बातें अपनेमें होनी चाहिएँ। पहली बात—चारित्रसहित ज्ञान हो, जितना सुख शान्ति अनुभूत होती है वह सब ज्ञानभावनाका ही प्रताप है। जब यह जीव अमूर्त निर्मल केवल ज्ञानज्योति मात्र है तो इसका किसी अन्य द्रव्यसे क्या सम्बध है ? चेतन मनुष्य कितने ही भले जचते हो और उनमे अपनी कीर्तिकी भावना हो, मेरा नाम फैले, मेरा यश बने, मैं श्रेष्ठ कहाऊँ। तो ऐसा सोचनेमे उसके पर्यायबुद्धि आ गई। भावना और ध्यान तो यह होना चाहिए कि मैं सर्वसे निराला, केवल ज्ञानमात्र हूं, बाहरमे जो होता हो, जिनका होता हो उसके ज्ञाता द्रष्टा रहे, पर यह बात विषयोंके लोभियोमे कभी सम्भव नही हो सकती। चारित्रहीन ज्ञान निरर्थक है। एक सिद्धान्तकी बात यह जानें कि जो तीन बातें है—१- श्रद्धान, २- ज्ञान और ३-चारित्र, ये मोही अज्ञानी जीवोके तो खोटे रूप रहती हैं—मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान व मिथ्याचारित्र और भेदविज्ञानी जीवके रत्नत्रय स्वभावरूपमे रहता है। सो इन तीनमे कर्मके बन्धका, आस्रवका कारण दो हैं—(१) श्रद्धान और (२) चारित्र। मात्र ज्ञानसे कर्मबन्ध नही, कर्मका आश्रव नही। जो कुज्ञानको कहते है कि कुज्ञान बुरा है और कुज्ञानसे बध बनता है तो उसमे यह विभाग जानें कि जो अश ज्ञानका है उससे तो कर्म नही बँधता, पर उसके साथ जो अज्ञान, रागद्वेष लगा हुआ है उससे कर्म बँधतो है। मत-

लब यह है कि कर्मबंधनका कारण श्रद्धान और चारित्र है, ज्ञान नही। सो जिस पुरुषको कुछ ज्ञान तो अधिक हो, मगर श्रद्धाहीन है, चारित्रहीन है तो वह बन्धनमे हैं। कर्मबध ज्ञानके अनुसार होगा या श्रद्धान चारित्रके अनुसार होगा ? जैसी श्रद्धा, जैसा चारित्र उसके अनुरूप कर्मबध होने व न होनेकी व्यवस्था है, पर ज्ञानसे नही है, सो जो चारित्रहीन ज्ञान है वह निरर्थक है। चारित्र उसके साथ होना ही चाहिए।

(१०) **सम्यक्त्वहीन लिङ्गग्रहणकी व संयमविहीन तपश्चरणकी निरर्थकता**—दूसरी बात यह है कि जो सम्यग्दर्शनसे हीन है वह यदि दिगम्बर भेष, मुनिभेष भी धारण करे तो उसका वह भेष व्यर्थ है। कर्म बंधनेसे हट जायें इस काममे कर्म शरीरकी चेष्टावोको नही देखते कि यह शरीरसे कैसी चेष्टायें करता है उसके अनुसार हम बँधें, किन्तु श्रद्धा और चारित्रका बिगाड़ देखकर बिगाडका निमित्त पाकर कर्म बँधते हैं। कर्मबधका कोई दूसरा साधन नही है। सो इस गाथामे कहते हैं कि चारित्रहीन ज्ञान निरर्थक है। और सम्यक्त्वहीन भेषका ग्रहण निरर्थक है। श्रद्धा ही नही है कि किसलिए निर्ग्रन्थ दिगम्बर हुए। बस अपने आरामको सुविधाके लिए, लोगोके द्वारा पुजापा बनानेके लिए निग्रन्थ हो जाते हैं, दिगम्बर भेषमे हो जाते हैं, किन्तु श्रद्धाविहीन पुरुषका कुछ भी तप भेष यह सार्थक नही होता। कर्मबन्ध इससे रुक जाय

ऐसा नही होना। तीसरी बात है सयमहीन तपश्चरण। कोई तपश्चरण करे तो करे, पर इन्द्रियसयम और प्राणसयम रच भी न हो साथ तो उसका तपश्चरण निरर्थक है। सो अपने लिए इससे यह शिक्षा ग्रहण करनी है कि जीवन अपना चारित्रमय बने, क्योकि प्रकृति तो चारित्रसे चलती है और अपने स्वभावको स्वयं चारित्ररूप देखें। यह ज्ञानमात्र स्वभाव है और अपने ही स्वरूपमे रहने वाला है, ऐसी दृष्टि करके अपने स्वरूपको निरखे तो उसका कल्याण है। आत्मज्ञान बिना धर्म के नामपर बडे-बडे भेष भी रख ले तो भी उससे न उसका खुदका लाभ है, न दूसरेको लाभ है। तो अपना जीवन चारित्रमय होना चाहिए और विषयोंसे विरक्त होना चाहिए।

णाणं चरित्तसुद्धं लिंगग्गहणं च दंसण विशुद्धं।
संजमसहिदो य तवो थोओ वि महाफवो होइ ॥६॥

(११) चारित्रशुद्ध ज्ञानकी महाफलदायकता—चारित्रसे शुद्ध तो ज्ञान हो और सम्यक्त्वसहित जिन मुद्राका ग्रहण हो और संयमसहित तप हो, ऐसे ये थोडे भी हो तो भी ये महाफल वाले होते है, ज्ञान चाहे थोडा हो, मगर चारित्रसे शुद्ध हो अर्थात् आचरण योग्यव्रतरूप हो तब थोडा भी ज्ञान हो तो भी वह महाफल देगा। इससे पहली गाथामे बताया था कि चारित्रहीन ज्ञान निरर्थक है। वहां निषेधरूपसे बताया था, यहां विधिरूपसे बतला रहे हैं कि ज्ञान कितना ही हो, उसके

साथ चारित्र हो तो वह बडा फल प्रदान करता है, क्योकि कर्मोंका बंध रोकना, कर्मोंकी निर्जरा होना यह चारित्रके आधीन बात है। रागद्वेषरहित परिणाम हो, समताकी ओर झुका हुआ हो, ज्ञान ही जिसके ज्ञानमे समा रहा हो वही वृत्ति तो चारित्र है। तो चारित्रसे शुद्ध ज्ञान महान् फल प्रदान करता है। जैसे कोई रोगी दवाई आदिकका ज्ञान तो खूब करे किन्तु उसका प्रयोग न करे, खाये नही तो वह ज्ञान कुछ फल देने वाला तो न रहा। औषधियोका बोध तो रहा, पर जब उनका प्रयोग ही कुछ नही किया जा रहा तो निरोगता कैसे हो ? ऐसे ही कोई आत्मा अपने ससाररोगके बारेमे और ससाररोग दूर होनेके बारेमे कुछ ज्ञान भी कर ले, पर अपने ज्ञानको उपयोगको आत्मस्वरूपके अनुरूप न बनायें तो उस ज्ञानसे फायदा नही और दृष्टि सही रखे, यथाशक्ति आत्मस्व भावकी ओर दृष्टि बनाये तो थोडा भी ज्ञान हो तो वह भी महान फल प्रदान करता है।

(१२) सम्यक्त्वशुद्ध जिनमुद्राग्रहणकी महाफलदायकता—सम्यग्दर्शनसे विशुद्ध जिनमुद्राका ग्रहण महान फल प्रदान करता है। कार्य क्या करना है ? जब यह बात प्रयोजनसे सही उतर जाती है तब क्रिया पुरुषार्थ उस उद्देश्यके पूरक हो जाते हैं। जिनमुद्रा ग्रहण करना तपश्चरण है, सयम है, ये किसलिए किए जाते हैं ? इसका जिनको परिचय है कि

आत्मा ज्ञानस्वरूप है और उस सहज ज्ञानस्वरूप अन्तस्तत्त्वको ही निरखना है, उस ही मे रमना है, वहाँ ही निस्तरग होना है, इस कार्यका जब परिचय हो और फिर वह जिनमुद्रा धारण कर यथासम्भव इस ही ज्ञानस्वभावमे मग्न होनेका पुरुषार्थ बनायें, तो उनका यह जिनमुद्रा ग्रहण महान् फलका देने वाला है। किस कारण कि आरभ और परिग्रहका त्याग किया जाता है। इसका ठीक परिचय विरक्त साधुको होता है। नग्नपना समस्त शल्योके दूर करनेका सूचक है, वह अपनेको निर्भार समझता है, स्वयमेव सारे आरम्भ छूट जाया करते हैं और आरम्भ परिग्रहको छोडनेका व्रत भी लिया है तो ऐसे श्रद्धान सहित जिनमुद्राका ग्रहण करना फलदायक होता है।

(१३) संयमसहित तपश्चरणकी महाफलदायकता — सयमसे सहित तपश्चरण हो तो वह तपश्चरण चाहे थोडा ही हो तो भी वह महान् फल देता है। संयम दो प्रकारके होते हैं—(१) इन्द्रियसयम, (२) प्राणसंयम। पञ्चेन्द्रियके विषयोसे राग न होना इन्द्रियसंयम है। जिसने आत्माके स्वभावके आनदका परिचय पाया है और जिसका यह दृढ निर्णय है कि आत्मा स्वयं आनन्दस्वरूप है, जब ज्ञानस्वरूप आत्माका अनुभव रहे, वही ज्ञानमे रहे, किसी परपदार्थपर उपयोग न जाय तो उस समय उत्पन्न हुआ आनन्द जिसने चख लिया है उसे विषयोमें प्रीति कभी हो ही नही सकती। तो जिसके

इन्द्रियसंयम है उसके वास्तविक तपश्चरण है। प्राणसंयममें ६ कायके जीवोंकी दया पाली जाती है। वास्तवमें अपने जीव के समान, अपने स्वरूपके समान स्वरूप वाला समझा हो और सामान्यदृष्टिसे देखा जाय तो सभी आत्मायें समान हैं, ऐसा जिसका निर्णय हो वह प्राणरक्षाका पौरुष कर सकता है। तो ऐसे इन्द्रियसंयम और प्राणसंयमसे सहित जो तपश्चरण है वह थोडा भी तपश्चरण हो तो भी विशाल फलको प्रदान करता है।

णाणं णाऊण णरा केई विसयाइभावसंसत्ता।
हिंडंति चादुरगदिं विसएसु विमोहिया मूढा ॥७॥

(१४) विषयविमोहित पुरुषोंका चतुर्गतिहिण्डन—कितने ही पुरुष जिनको कि स्व और परतत्त्वका ज्ञान नही है वे ऊपरी बाहरी ज्ञानको जानकर भी विषयरूप भावमे आसक्त होते सन्ते चतुर्गतिमे भ्रमण करते रहते है। खुद खुदका परिचय कर ले यह स्थिति जिसने पायी है वह पुरुष उत्कृष्ट पुरुष है। उसने सर्व समस्यावोंका हल कर लिया जिसने अपने सहज स्वरूपका परिचय पा लिया। और जिसको सर्व परपदार्थोंसे भिन्न ज्ञानमात्र आत्मतत्त्वका परिचय नही है वह पुरुष इस स्थितिको नही पा सकता कि जहाँ सहज आनन्दका अनुभव हो सके, सो वह तो निकृष्ट है ही कि जिसके मिथ्यात्व भी है और विषयोमे आसक्ति भी है, लेकिन अनेक पुरुष ज्ञानको

जानकर भी विषयोके भावमे आसक्त रहते है तो वे चतुर्गति रूप संसारमें परिभ्रमण करते रहते हैं। तो जो विषयोंमे मुग्ध बुद्धि वाले जन हैं वे विषयामे आसक्त होकर संसारमे परिभ्रमण करते रहते हैं।

जे पुण विसयविरत्ता णाणं णाऊण भावणासहिवा।
छिंदति चादुरगदि तवगुणजुत्ता ण संदेहो॥ ८॥

(१५) विषयविरक्त ज्ञानभावनासहित तपस्वी संतोंका चतुर्गतिबन्धछेदन—जो पुरुष विषयोसे विरक्त है और ज्ञानस्वरूपको जानकर ज्ञानकी भावनासे सहित हैं वे तपस्वीजन चारो गतियोके बन्धनको काट देते हैं, इसमे कोई भी सन्देह नही। मुख्य चिन्ह है कल्याण पाने वालेका, विषयोसे विरक्त होना। जिसके हृदयमे छूने, खाने, सूंघने, देखने, सुनने आदिक विषयोकी वृत्तिमे उमग नही है और इन विषयोकी वृत्तिको उपद्रव मानते है ऐसे विषयविरक्त पुरुष इस संसारके बन्धन को काट देते हैं। विषयोसे विरक्ति किसके होती है ? जिसको यह श्रद्धा हो कि विषय परद्रव्य हैं। उन परद्रव्योंसे मुझ आत्माका कोई सम्बन्ध नही है, ऐसा यथार्थ जानकर जो अपने स्वरूपकी ओर अभिमुख होता है वह पुरुष विषयोंसे विरक्त रहता है। दृष्टि जैसी मिलती है उसके अनुसार कार्य होता है। जिसमे परको आत्मा माननेकी धुन और आदत होती है वह विपत्तियोका ही उपाय बनाया करेगा और जिसको निरापद

अपने ज्ञानस्वरूपका ज्ञान है वह पुरुष सन्मार्गपर है और अपना कल्याण करेगा। तो विषयोंसे विरक्त होना इससे अन्दाज लगता है कि कौन पुरुष कितना धर्ममार्गमे बढ चुका है। तो विषयोंसे जो विरक्त पुरुष है वह ज्ञानसे जानता है और ज्ञान की भावना किया करता है। सो ऐसा विवेकी पुरुष तपश्चरण आदिक गुणोंसे युक्त होकर चारो गतियोंके बन्धनको तोड देता है। जानने वाला यह ज्ञान ही तो है। यह ज्ञान कहाँसे जगा, कैसे निकला, उसका क्या रूपक है, इसका परिचय जिन्हें हो गया उनको आत्मदृष्टि होती है। ज्ञान मेरा स्वरूप है। पहले मुझमे ज्ञान न था, अब आ गया, ऐसी बात नही होती। जबसे जीव है तब ही से ज्ञानस्वरूप है। तो ऐसे अपने ज्ञान-स्वरूपको जानकर यह ज्ञानभावनासे सहित है। मैं ज्ञानमात्र हू, अपने प्रदेशोमे सर्वत्र ज्ञानप्रकाश ही निरखना, सो ऐसी ज्ञानभावनासहित पुरुष चारो गतियोके भ्रमणको छेद देते हैं। अब उनका ससारमे जन्ममरण न होगा। दो एक भव ही होकर उनके कर्मबधन ये सब टूट जायेंगे। तो जो पुरुष विष-योसे विरक्त है, ज्ञानसे जानकर ज्ञानकी भावनासे युक्त है वह ही पुरुष इस ससारबधनको तोड सकता है। यह ससार महाजाल है, इससे अलग होना कठिन है। इसमे रहना कठिन है। संसारमे रहनेपर, उपयोगको जमानेपर इस जीवको आकु-लता ही है, और जहाँ इस ससारभावसे उपेक्षा की, ज्ञानमे

ज्ञानका स्वरूप ही बन रहा हो, ऐसे पुरुषोंको सन्मार्गपर चलना बहुत आसान है। सो जो आत्मस्वरूपको जानता है और इसके फलमे विषयोंसे विरक्त है और विषयविरक्तिके उपायसे जिसके ज्ञानभावना अधिकसे अधिक बन रही है वह पुरुष उस ज्ञानके पूर्णविकासको पायगा और अनायास ही जगतके तीन लोक तीन कालके सारे वैभव यहाँ प्रतिभासित होगे। सो विषय-विरक्तिको अपने जीवनमे बहुत महत्त्व देना चाहिए। जितनी विषयोमे प्रवृत्ति रहे, समझो उतने क्षण इस जीवनके बेकार है। विषयोंसे विरक्त होकर निज स्वभावके अभिमुख रहे तो उसके समस्त दुःखोका क्षय होता है। सो इस गाथामे यह ही कहा जा रहा है कि विषयविरक्त पुरुष ही चतुर्गतिके बन्धनको तोड सकता है।

जह कंचणं विसुद्धं धम्मइयं खडियलवणलेवेण।
तह जीवो वि विसुद्धं णाणविसलिलेण विमलेण ॥६॥

(१६) निर्मलज्ञानसलिलसे जीवकी विशुद्धता—जैसे स्वर्ण किसी पाकपर उतरे, जैसा कि उपाय होता है, अग्निमे तपे, सुहागा और नमक उस मलिन स्वर्णपर डालनेसे वह स्वर्ण निर्मल और विशेष कांति वाला हो जाता है। ऐसे ही ये जीव जो भी विषयकषायके मलसे मैले हैं, यदि वे निर्मल ज्ञान रूपी जलसे अपने आपको धोयें, साफ करें तो वे कर्मोंसे रहित होकर विशुद्ध सिद्ध भगवन्त हो जाते हैं। अशान्तिकी निष्पत्ति

बनती है किसी भी परद्रव्यको ग्राश्रय बनानेपर । यदि परद्रव्य के ग्राश्रय बनाये बिना सुख ग्रथवा दुःख हो जाय तो वह स्व-भाव बन बैठेगा ग्रौर फिर उनको हटानेकी कोई ग्रावश्यकता ही न समझेगा । तो ग्रपने ग्रात्माको ज्ञानरूपी जलसे खूब धो धोकर कर्मोंसे रहित स्थितिको पाना चाहिए । जब कोई निर-न्तर प्रतिदिन ग्रपने बारेमे भाये—मैं ज्ञानमात्र हू तो इस ज्ञान-मात्र भावनाका वह फल है कि ऐसी स्थिति पा लेता है तो वहां किसी तरहका सकट ग्रनुभवमे नही रहता । सो बतला रहे है इस गाथामे कि जैसे निर्मल स्वर्ण या कोई स्वर्ण सुहागा ग्रौर लवण (नमक) का लेप करनेसे कान्तिवान बन जाता है ऐसे ही ग्रात्मा ज्ञानके योगसे, ग्रपनेको ज्ञानरूप निरखते रहनेसे यह जीव भी शुद्ध हो जाता है ।

(१७) **ग्रात्माकी ज्ञानमयता**—ज्ञान ग्रात्माका प्रधान गुण है । ज्ञानमय ही जीव है, ज्ञानसे ही रचा हुग्रा जीव है । जैसे यहांके दिखने वाले पुद्गल रूप, रस, गध, स्पर्शमय हैं, वस्तुतः तो जो जैसा है सो है, पर उसमे विदित तो होता है कि रूप है, तो रूप कही उस पुद्गलमे बाहरसे ग्राया हुग्रा नही है या उधार लाया हुग्रा नही है, किन्तु वह रूपमय ही स्वयं है । जैसे कोयलेमे कालापन । जो बुझा हुग्रा कोयला है उसमे जो कालापन है सो वह कालापन कही बाहरका चिपकाया हुग्रा नही है, किन्तु उसमे स्वयं ही वह रूप है । जैसे स्वर्ण

का पीतापन। उसमें वह रूप रंग कहीं बाहरसे बनाया हुआ नहीं है। कोईसा भी रूप हो, यह तो परिवर्तित हो जायगा, मगर किसी समय पुद्गल रूपरहित हो जाय, यह कभी नहीं हो सकता। तो ऐसे ही आत्मा ज्ञानस्वरूप है। मीमांसकोंकी तरह जैनसिद्धान्त नहीं है कि ज्ञान गुण नामका पदार्थ अलग है और आत्मा नामका द्रव्य अलग है और उनमें संयोग संबंध या समवाय बननेसे आत्मा बनता है, ऐसा नहीं है। आत्माका स्वरूप ही यही है, वह ज्ञानमय है और उसके ज्ञानमें सर्व पदार्थ झलकते हैं। तो अपनेको अन्त: ज्ञानमात्र ही निरखे कोई तो अपना स्वरूप अपनेको दृष्टिगत हो जायगा। मोक्षमार्ग के लिए, शान्ति पानेके लिए मात्र एक यही कर्तव्य है कि अपने को ज्ञानमात्र निरख लें। केवल जाननस्वरूप हो, ऐसा ज्ञान-मात्रकी भावना करने वाला पुरुष उन कर्मकलंकोंसे निवृत्त हो जाता है। आत्माका यह स्वभाव, ज्ञानस्वभाव मिथ्यात्व और विषयोंसे मलिन हो रहा है। सो यथार्थ ज्ञान होनेपर उस रूप पदार्थको निरख-निरखकर आत्मामें जो एक पवित्रता बनती है उसके प्रतापसे ये सर्व मलविकार दूर हो जाते हैं। सो विषयकषाय मिथ्यात्वके भाव दूर करके अपनेमें मैं ज्ञानमात्र हूं, ऐसी निरन्तर भावना रखना चाहिए। जो रखता है उसके इस ध्यानके प्रसादसे कर्मोंका नाश होता है, अनन्त चतुष्टय प्रकट होता है और वह आत्मा शुद्ध पवित्र सदाकालके लिए

उत्कृष्ट आनन्द वाला हो जाता है। सो अपनी इस अमूल्य निधिपर ध्यान देना चाहिए और ससारके इन विभिन्न पौद्गलिक चमत्कारोमे अपनेको न उलझाना चाहिए। इस प्रकार यह जीव ज्ञानस्वभावी मिथ्यात्वसे वासित होकर अपनेको दुःखी बना रहा है, पर जैसे ही स्वभावका परिचय मिला और स्वभावरूप ही अपनेको बार-बार भाया तो उसके ये सारे विरुद्ध कार्य, विरुद्ध विकार समाप्त हो जाते हैं।

णाणस्स णत्थि दोसो कप्पुरिसाणो वि मंदबुद्धीणो।
जे णाणगव्विदा होऊणं विसएसु रज्जंति ॥ १० ॥

(१८) ज्ञानगर्वित पुरुषोकी विषयानुरक्तिमे ज्ञानके दोषका अभाव—कोई ज्ञानका गर्व करके विषयोंमे अनुरक्त होते हैं तो वहां यह दोष ज्ञानका न समझिये, किन्तु जो मंदबुद्धि हैं और खोटी विकारवासना बनी है, चारित्रमोहका उदय है तो ये विकार बने हैं, ज्ञानका तो जानना काम है शुद्ध काम अर्थात् मात्र ज्ञानका ही जो काम है उसमे दोष नही है। दोष आता है किसी परउपाधिसे, क्योंकि ज्ञान तो आत्माका स्वरूप है, चाहे वह थोड़ा हो, अधिक हो, चाहे उल्टा ज्ञानमे आ रहा हो, मिथ्या जान रहा हो, पर उसमे जो जानन अंश है वह तो है ज्ञानका काम और जितना विकार अंश है वह है चारित्रमोहका काम। जैसे बल्बके ऊपर हरा कागज लगा देनेसे रोशनी हरी हो रही है, पर वह रोशनी हरी नहीं है। रोशनी

का जितना शुद्ध काम है वह तो प्रकाशरूप है । उस हरे प्रकाश मे दो दृष्टियां रखनी हैं—(१) केवल प्रकाशन और (२) हरापन । तो जितना हरापन है वह प्रकाशसे अलग बात है और जितना प्रकाश है वह दीपकका कार्य है । तो ऐसे ही जो ज्ञान विकृत है, जिस ज्ञानके साथ विकार चल रहा है, तो लगता है कि ज्ञान ही तो विकृत हुआ, पर वहां ज्ञानका जितना कार्य है वह तो है केवल प्रतिभास, जानन और बाकी जितना विकार है वह चारित्रमोहादिकका कार्य है ।

(१६) ज्ञानका परिणमन प्रतिभासमात्र—निश्चयतः देखें तो जो सशयज्ञान है, विपरीत ज्ञान है वहां भी ज्ञानका कार्य प्रतिभास है, कल्पना विकार है, जैसे पडा तो है मानो कांच और सोच रहे हैं चादी या पडी तो है रस्सी और सोच रहे हैं कि साप पडा है । तो जो ऐसा उल्टा ज्ञान जगा है उसमे जितना जाननरूप कार्य है वह तो ज्ञानका है और जितना उल्टापन साथ लगा है वह अन्य कारणोसे हुआ है । जैसे दृष्टि बंद होना, बहुत दूर पडा होना और जैसा आकार सांपका होता है उस ही ढंगमे रस्सी पडी हो और उनका विशेष अन्तर प्रदर्शित करने वाली बात ज्ञानमें आ न रही हो तो ऐसे कई कारण होनेपर वह उल्टापन होता है । तो वहां सिर्फ जितना जानन अंश है वह तो ज्ञानका कार्य है और बाकी सब उपाधिका कार्य है । संशयज्ञानमे भी जैसे पड़ी हो

सीप है और ज्ञान यों सोच रहा है कि यह सीप है या चांदी, तो जो प्रतिभासमे आया सफेद स्वच्छ आकार याने जिस ज्ञान के सम्बंधमे शब्दयोजना नही बनती, खाली प्रतिभास हो रहा वह तो शुद्ध है याने वही है, किंतु उपाधिका सम्बध होनेसे कुछ अन्य कारणकूट मिलनेसे विकल्प बन गए हैं। सो यह तो और भी सूक्ष्म बात है, पर ज्ञानी पुरुष अपार ज्ञान पाकर और व्यर्थके विकल्पोमे आकर विषयोंसे अनुरक्त रहे तो वह दोष ज्ञानका नही है, किन्तु उपाधिका दोष है, ऐसा कहकर आत्मा मे शील स्वभावपर मुख्य दृष्टि करायी गई है। यह शीलपाहुड ग्रन्थ है, इसमे आत्माके शीलका वर्णन है। शील, शील क्या ? ज्ञान, मात्र जानन। जो स्वभाव है वह शील है। तो शीलकी दृष्टिसे देखें तो आत्मामे जो ज्ञान जग रहा है उसका कोई दोष नही होता। दोष होता है उपाधिके मेलका।

(२०) विकारकी मोहनिमित्तता व ज्ञानकी प्रतिभासमात्रता—इस प्रकरणमे मुनियोकी बात कही जा रही है। वे समझ वाले हैं, ज्ञान वाले हैं, तो उस दृष्टिसे देखें तो ज्ञानका दोष नही है, वह उपाधिका दोष है, और सभी जीवोमे देख लो कोई अज्ञानी जीव है तो न भी मात्र ज्ञान और शीलकी दृष्टिसे देखें तो मात्र जो जानन है वह तो ज्ञान है और उसके साथ जो विकल्प हर्ष विषाद आदिक लग रहे हैं वह सब उपाधिकृत बात है। यहां कोई ऐसा न समझे कि ज्ञानसे जब

पहले पदार्थोंको जाना तब ही वह विषयोंमें रंगायमान हुआ, राजी हुआ तो यह ज्ञानका दोष है, और ज्ञानसे कुछ जाने बिना कोई विषयोंमें लगता नही, चाहे कुछ जाने, जब विषयभूत पदार्थोंका उपयोग नही है तो विषयसाधन कैसे बनेंगे ? सो ज्ञानसे कष्ट लगा है। उत्तर जो विवाद हुआ है वह ज्ञानका दोष नही है, किन्तु वह पुरुष खोटा है, मदबुद्धि है, उसका होनहार खोटा है, बुद्धि बिगड गई है, विकार साथमे आया है सो गर्वमे छककर वह विषयोमे आसक्त बना है। सो वहां ज्ञानका कार्य तो उतना ही है कि जो वस्तु जैसी हो वैसा जान जाय। पीछे जो प्रवृत्ति होती है वह जैसी श्रद्धा है और चारित्र है वैसी प्रवृत्ति होती है।

णाणेण दंसणेण य तवेण चरिएण सम्मसहिएण।
होहदि परिणिव्वाण जीवाण चरित्तसुद्धाणं ॥११॥

(२१) सम्यक्त्वसहित ज्ञान दर्शन तप चारित्रसे चारित्रशुद्धोंका निर्वाण—निर्वाण कैसे प्राप्त होता है ? सिद्धभक्ति आदिकमे और उसकी अचलिकामे बताया है कि अनेक तपसिद्ध हैं, ज्ञानसिद्ध है, सयमसिद्ध है, चारित्रसिद्ध है तो कही ऐसा नही है कि ज्ञानदर्शन आदिक तो हैं नही, केवल तप कर रहा और सिद्धि मिल गई। अलग अलग धर्मोंकी मुख्यतासे निर्वाण कहा है, पर वहां यह समझना कि सभी बातें सबके होती हैं, पर उनमे किसीके कुछ मुख्य होती है। अन्तम जाकर जहां

अप्रमत्त दशा और श्रेणी होती है वहां एकसी दशा रह जाती है। जब तक यह प्रमाद है, व्यवहार है तब तक भिन्नता नजर आती है। किसीके तपकी मुख्यता है, किसीके विनयकी मुख्यता है। किसीके विशेष शोधकी मुख्यता है, पर जहां अप्रमत्त हुआ, श्रेणीमे आरूढ हुआ वहा फिर ये विभिन्नतायें नही रहती हैं। विभिन्नतायें तब भी चलती हैं, मगर सूक्ष्म हैं। अप्रतिवृत्तिकरण गुणस्थान होते ही विभिन्नतायें खतम हो जाती हैं। सबका एकसा परिणाम चलता है। तो यहाँ यह समझना कि सम्यग्दर्शनसहित ज्ञान हो उससे निर्वाण है, सम्यक्त्वसहित दर्शन हो उससे निर्वाण है, सम्यक्त्वसहित चारित्र हो उससे निर्वाण है। यहाँ जो ५ बातें कही गई हैं सो निर्वाण पाने वालेके पाँचो ही होती है। कही यह नही है कि कोई तीनसे, कोई दो से निर्वाण पा ले, मगर वहां मुख्यता जिसके जैसी देखी जाती है उसकी रूढ़ि हो जाती है, पर सम्यक्त्व सबके साथ होना ही चाहिए। सम्यक्त्व तो होता है मार्गदर्शक और चारित्र होता है चालक। जैसे जहाजोके-चलनेमे बडे-बडे समुद्रो मे मार्गदर्शक चिन्ह लगे रहा करते हैं तो वे मार्गदर्शक चिन्ह जहाजको नही चला सकते, मगर मार्गदर्शक चिन्होंके अनुसार जहाज चलाया जाता है, तो ऐसे ही सम्यक्त्व तो है मार्गदर्शक और चारित्र है चालक, इतनेपर भी चूंकि सम्यक्त्व भी आत्मा मे अभेद है, चारित्र भी आत्मामे अभेद है, तो सम्यक्त्वमें भी

थोडा चालकपन बचा हुआ है और तब ही तो सम्यग्दर्शनके होते ही चारित्र चाहे अणु भी न हो तो भी उसके ४१ प्रकृतियोका सम्वर रहता है। तो सम्यक्त्वसहित ज्ञानसे, दर्शनसे, तपसे चारित्रसे चारित्रशुद्ध जीवोका निर्वाण होता है। यहा दो बातें मुख्य आयी हैं—(१) सम्यक्त्वसहित और (२) चारित्रशुद्धि, ये सबमे होना चाहिए। अन्य बातोकी मुख्यता और गोणता चलती है।

सीलं रक्खंताणं दंसणसुद्धाण दिढचरित्ताणं।
अत्थि धुवं णिव्वाणं विसएसु विरत्तचित्ताणं ॥१२॥

(२२) शीलके आलम्बनके प्रतापसे निर्वाण—जो पुरुष विषयोसे विरक्त हैं, शक्तिका रक्षण करने वाले है, सम्यग्दर्शन से शुद्ध हैं, चारित्रमे दृढ़ हैं उन पुरुषोंका नियमसे निर्वाण होता है। कितने ही पुरुष ऐसे भी मुनि हुआ करते हैं कि जिनके चित्तमे यह बसा रहता है कि मैं बडा शुद्ध चारित्र पालता हू और ऐसा मनमे ख्याल जमाये रखनेसे अन्य मुनियो मे उनको दोष नजर आने लगते हैं, ये नही निभा पाते, हम इतना निभा लेते है, और ऐसा भाव आनेसे उनके चारित्रमे हीनता हो जाती है, क्योंकि पर्यायपर ही उनकी अधिक दृष्टि गई है। चारित्र तो ज्ञानस्वभावमे आत्माके शीलमे रमण करने का है। चारित्र पालनहारको चारित्र पालते हुए भी उस चारित्रकी वृत्तिपर दृष्टि नही रहती। हो रहा है सब ठीक काम,

मगर चारित्र एक पर्याय है, उसे निरखकर गर्व आता हो तो यह चारित्रमे हीनता करता है। जहाँ इतनी सूक्ष्म बात है वहाँ यदि कोई मोटे दोष पाये जायें तब तो हीनता विशेष है ही। प्रश्न—प्रगतिका हेतु यदि सम्यग्दर्शन है सम्यक्चारित्र है तो फिर सम्यग्ज्ञान क्या है? उत्तर—आत्मामे ये तीन पर्याय हैं सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, पर सम्यग्ज्ञानमे सम्यक्पना या मिथ्यापना नही होता। ज्ञानमे सम्यक्पना आया है सम्यक्त्वके सहवाससे, और मिथ्यापना आता है मिथ्यात्वके सहयोगसे; तब ज्ञानके कार्यमे केवल जाननमात्र इतना ही तकना है और यह जाननमात्र आत्माका पतन करता है और न आत्माका उत्थान करता है। यह तो आत्माके साथ लगा हुआ है। उत्थान कहते हैं पतनसे हटकर ऊपर चढनेको और पतन कहते हैं नीचेकी ओर गिरनेको, और उपाधिके सम्पर्कसे पतन होता है और उपाधि दूर हो जाय तो उसका उत्थान होता है। ज्ञान तो सर्वत्र जाननमात्र रहता है, उससे पतन और उत्थानकी व्यवस्था नही है। सूक्ष्मदृष्टिसे देखना।

(२३) **ज्ञानमय आत्माको अभेद व भेददृष्टिसे निरखनेपर ऐक्य व वैविध्यका वर्णन**—जैनशासनमे दृष्टियाँ अनेक होती हैं एक दृष्टिसे तो सब कुछ ज्ञानका ही काम है, चारित्र, सम्यक्त्व अन्य चीजें ये कुछ हैं ही नही उस दृष्टिसे। ज्ञान ही उसरूप बना, ज्ञान ही उस रूप बना, सब रूप ज्ञानने दिखते जायेंगे।

जैसे सुख है तो ज्ञानका ही एक ऐसा जाननेका ढंग बनना कि जिसके फलमे सुख प्राप्त हो, जाननेकी ही ऐसी विधि और ढंग मिलता कि जिससे दुःख प्राप्त हो, तो सब कुछ ज्ञान है, मगर विश्लेषण करके दृष्टियोसे देखा जाय तो भेददृष्टिसे देखनेपर यह सब अन्तर नजर आता है। तो सम्यग्ज्ञान तो एक ऐसा आधार है कि जिसमे मिथ्यात्व चढ़े तो मना न करे, सम्यक्त्व आये तो मना न करे, जैसे सफेदपर कोई भी रंग चढाया जाय तो वह चढ जायगा। जैसे राष्ट्रीय तिरगे झडेमे सफेद रंगको बीचमे रखा है तो ऐसे ही इस रत्नत्रयमे बीचमे सम्यग्ज्ञान है। उस सफेदपर पीला रग भी चढ जाय और हरा रग भी, तथा दोनो रगोका मध्यवर्ती है श्वेत। तो ऐसे ही सम्यग्ज्ञान एक सामान्य जाननका नाम है, उसमे कोई तरंग या विशेषता नही जगती। भेद दृष्टिसे कहा जा रहा है कि कोई कितनी ही गडबडीमे आये तो वहाँ ज्ञानका दोष नही है, किन्तु अन्य जो कुछ उपाधियाँ चल रही है उन उपाधियोका दोष है।

(२४) विषयोसे विरक्ति होनेपर शीलका विकास—जो विषयोसे विरक्त होना है, बस यही शीलकी रक्षा है। शील मायने स्वभाव, अविकारभाव, ज्ञानभाव। उस ज्ञानमे विकार न आ सके, यह ही शीलकी रक्षा है और उसमे विकार आये तो वही शीलकी अरक्षा है। सो जिसका सम्यग्दर्शन शुद्ध है, चारित्र भी निर्दोष निरतिचार शुद्ध है ऐसे पुरुषका नियमसे

निर्वाण होगा। जब-जब चारित्र शब्द कहा जाय तो मोक्षमार्ग के निश्चयके प्रकरणमे ज्ञानमे ज्ञानका ठहरना यह अर्थ लिया जाना चाहिए। चारित्र और कुछ चीज नही है। चलना, समितिपालन, आहार लेना, मूल गुण पालन, क्रियायें, निश्चय-चारित्रके स्वरूपमे इनकी प्रतिष्ठा नही है, मगर मार्ग जरूर है। मार्ग इस कारण है कि कोई पुरुष चारित्रमे चलता है तो उसके जो पूर्व सस्कार हैं उन संस्कारोसे वह चारित्रमे चल नही पाता और वहाँ कुछ विपरीत वृत्तिमे लगनेका अवसर आता है। तो विपरीत भावमे न लग सके उसके लिए यह व्यवहारचारित्र है, जिसके प्रसादसे यह जीव निश्चयचारित्रका पात्र होता है।

विसएसु मोहिदाणं कहियं मग्गं पि इट्ठदरिसीणं।
उम्मग्गं दरिसीण णाणं पि णिरत्थयं तेसिं ॥१३॥

(२५) यथार्थदर्शियोंकी विषयमोहित होनेपर भी मार्ग-लक्ष्यता—जो पुरुष ज्ञानी हैं, सही मार्ग दिखाने वाले हैं, पर विषयोमे विमुग्ध हैं तो भी उनको मार्गकी प्राप्ति हो सकती है, पर जो उन्मार्गके दिखाने वाले हैं उनका ज्ञान पाना निरर्थक है। उनको लाभ नही हो सकता। ज्ञान पाकर और ज्ञानसे सही प्ररूपणा पाकर अपने लिए सही निर्णय करके भी यदि उसके विषयोमे वृत्ति बनती है तो भी वह पार हो जायगा। यह अल्पदोष आगे दूर हो जायगा, किन्तु जो उल्टा ही मार्ग

बताये और उल्टा ही हठ करे तो उसको मार्गका लाभ नहीं होनेका, क्योकि उसने एक ज्ञानकी दिशा ही बदल दी। इसमे यह बतलाया था कि ज्ञान और शीलमे विरोध नही है, अर्थात् जो शील है सो ही ज्ञान है, फिर भी ज्ञान हो और विषय-कषाय होकर ज्ञान बिगड जाय तब शील नही है। ज्ञान पाकर चारित्रमोहके उदयसे विषय नही छूटे और इससे विषयोमे विमुग्ध रहे और मार्गका प्ररूपण सही करे, विषयोके त्यागरूप ही करे तो भी उसे मार्गकी प्राप्ति हो जायगी, किंतु दोष भी करे और दोषोको गुणरूप सिद्ध करे तो उसको मार्गका लाभ नही मिल सकता। दोष करता हुआ दोषको जो दोष जानता है वह तो सुलझ जायगा और दोष करता हुआ दोषको गुण बताता है और ऐसा ही प्ररूपण करता है, ऐसे पुरुषको सन्मार्ग नही प्राप्त होता।

(२६) उन्मार्गप्ररूपण करने वालेके ज्ञानकी भी निरर्थकता—चार प्रकारके पुरुष होते हैं, एक तो ज्ञान सही है और विषयोसे भी विरक्त है। और एक वह, जिसका ज्ञान सही है, पर कर्मविपाकवश उस मार्गपर चल नही पाता व विषयमें अनुरागी हो जाता है और एक वह पुरुष है कि विषयोमे अनुराग भी है और उन विषयोका समर्थन भी करता है, दोषको दोष रूप नही कह सकता और एक चौथा पुरुष ऐसा लीजिए कि जिसके ज्ञान भी बहुत है, आचरण भी करता, विषयोको

भी छोड रहा और फिर खोटे मार्गका प्ररूपण करता है तो इसमे दृष्टिसे घटित करना चाहिए कि जो ज्ञानी है और विरक्त है, यथार्थ प्ररूपण करता है। वह तो उत्तम है और जो ज्ञानी है व यथार्थ प्ररूपण करता है, पर विषयोको छोड नही पाता है, वह उसके बादका है। जो ज्ञानी है व विषयोका अनुराग नही करता, विषयोको छोड़ता है, मगर खोटा प्ररूपण करता है वह जघन्य है और फिर प्ररूपण भी खोटे करे, विषयोमे भी आसक्त हो तो वह ऐसा अत्यन्त निकृष्ट जीव है। पर यहाँ केवल आत्माके शील स्वभावपर दृष्टि देकर निरखें तो चाहे कोई भी जीव हो, कैसा भी जीव हो, ज्ञानका काम तो मात्र जानन है और जितना ऐव लगा है वह ज्ञानके दोषकी बात नही है, किन्तु उपाधि और कर्मविपाकके ससर्गकी बात है। सो यहाँ मुख्यतया यह कहा कि खोटे मार्गके प्ररूपण करने वालेका सब कुछ ज्ञान भी निरर्थक है।

कुमयकुसुदपससा जाणंता बहुविहाइं सत्थाइं।
सीलवदणाणरहिदा ण हु ते आराधया होंति ॥१४॥

(२७) बहुशास्त्रज्ञाता होनेपर भी अधर्मप्रशंसक शीलव्रत-ज्ञानरहित भिक्षुओंकी अनाराधकता—जो पुरुष बहुत प्रकारके शास्त्रोको जानते हैं और कुमत कुशास्त्रकी प्रशसा करने वाले हैं व शील और व्रत एवं ज्ञान इनसे रहित हैं वे आत्मस्वभाव के आराधक नही हैं। आत्माका शील है ज्ञानस्वरूप। जो

आत्माका स्वरूप है, सो ही आत्माका शील है। वे पुरुष शील से रहित है जो कुमति कुशास्त्रकी प्रशंसा करते हैं, कैसा विचित्र अभिप्राय होता है कि जैन तत्त्वोंका ज्ञान भी बहुत है फिर भी खोटे शास्त्रोंकी प्रशंसा करने वाले होते हैं, उनको जैनसिद्धान्तकी बात भीतरी नही आयी और अन्य लोगोकी बात आसान है, इस कारण उनकी प्रशंसा करते हैं वे पुरुष शील, व्रत, ज्ञान इन तीनोंसे रहित हैं, उन्हे सच्चा ज्ञान होता तो अध्यात्मदृष्टिकी ही उनको धुन होती, सो जो लोग बहुत शास्त्रोंको जानते है और कुमत कुशास्त्रकी प्रशंसा करते है तो यो जानना कि कुमत और कुशास्त्रसे ही उनको राग है, उनको उन्ही कुशास्त्रोसे प्रीति है तब उनकी प्रशंसा करते है तो वे सब मिथ्यात्वके चिन्ह है और जहाँ मिथ्यात्वभाव है वहाँ ज्ञान भी मिथ्या है, और जहाँ ज्ञान मिथ्या है वहाँ विषयकषायसे रहित होना नही बन सकता। विषयकषायसे रहित हो, विकार न आयें, केवल ज्ञाताद्रष्टा रहें तो यह ही है आत्माके शीलका पालन। सो जिनके मिथ्याबुद्धि लगी हैं वे आत्माके शीलका पालन नही कर सकते और जिनके मिथ्यात्व लगा है उनके व्रत भी नही पलता, ऐसा कोई व्रत आचरण यदि करे तो वह मिथ्याचारित्ररूप चलता है, सो जो पुरुष कुमत कुशास्त्रकी प्रशंसा करने वाले हैं वे रत्नत्रयके आराधक नही हो सकते, जिन्होने आत्माका अनुभव पाया वे आत्माका अनुभव जिन

कथनोमे मिले उन कथनोसे ही प्राप्त करेंगे, पर अन्य शास्त्र तो राग बढाने वाले हैं। आत्मानुभवकी ओर ले जायें, ऐसी कथनी कुशास्त्रमे नही है। तो जो कुशास्त्रकी प्रशसा करते हैं उनमे रत्नत्रय नही है, यह बात नि.सदेह है।

रूवसिरिगव्विदाणं जुव्वणलावण्णकंतिकलिदाणं।
सीलगुणवज्जिदाणं णिरत्थयं माणुसं जम्म ॥१५॥

(२८) **रूपश्रीगर्वित शीलगुणव्रतरहित पुरुषोंके मनुष्यजन्म की निरर्थकता**—जो पुरुष रूप और लक्ष्मीका गर्व करते हैं, जवानी है, रूप सुन्दर है, उसके घमंडमे हैं, कोई पुण्ययोगसे धन (लक्ष्मी) प्राप्त हुआ है उसका घमड करते हैं, तो जो पुरुष ऐसी सुन्दरतासे सहित हैं कि जो बहुतोको प्रिय लगें, यौवन अवस्थासहित हो और काति प्रभाकर मण्डित हो और साथ ही लक्ष्मी भी प्राप्त हो, उस लक्ष्मीमे मदोन्मत्त हो वे पुरुष शीलसे रहित हैं, गुणोसे रहित हैं, उनका मनुष्यजन्म निरर्थक है। शान्तिका आधार है अपने आत्माका ज्ञान। दूसरा कोई आधार नही। दुनियामे जो बडे कहलाते, सुखी कहलाते, देखने मात्रमे, जगतमे कोई सुखी नही। कोई करोडपति है तो वह गरीबोसे भी अधिक दु खी रह सकता है। उसे उलझन, न जाने कहाँ-कहाँके ख्याल, न जाने क्या क्या विकल्प, वे सब परेशान करते हैं। कोई देशका राजा है, नेता है, जैसे प्रजातत्र मे कोई लोग बन गए बड़ी सभामे मेम्बर, तो कैसे ही ऊँचे

पदपर कोई आ जाय, चाहे मिनिस्टर बने, पर उसके आत्मा-को चैन नही है। हो ही नही सकती चैन। जो परपदार्थपर दृष्टि रखेगा उसको चैन कभी नही मिल सकती। सो चैन तो नही है, पर रूप मिला, लक्ष्मी मिली, उसका घमंड भी किया, अब जिसे घमड आता है वह शीलसे भी रहित है और गुणसे भी रहित है, और उसका जन्म निरर्थक है। यह मनुष्यजन्म बडी कठिनाईसे मिलता है। जगतके अन्य जीवोपर दृष्टि डाल-कर देखो--घोडा, भैंस, गधा, बैल, कुत्ता आदिक ये भी तो जीव है। जैसे जीव हम है वैसे ही वे जीव है। और हम आप क्या उन जैसे जीव कभी हुए न होगे? अरे उन जैसे भी हुए, यहाँ तक कि एकेन्द्रिय जीव तो थे ही थे, उसमे तो कोई सदेह नही। तो ऐसे अनन्तानन्त जीव बसे है ससारमे, उनके मुकाबलेमे देखो तो सही, यह मनुष्यभव कितना श्रेष्ठ भव है, पर इस भवमे भी यह जीव शान्त नही रहना चाहता। और सोचो तो सही कि अगर हम मनुष्य न होते आज, और कोई कैसे ही कुत्ता, बिल्ली, गधा, भैसा, सूकर आदि होते तो क्या उन जैसा जीवन न व्यतीत करते? आज हम आपकी स्थिति उन सब जीवोसे अच्छी है। मान लो आज हम मनुष्य न होते, अन्य किसी भवमें होते तो यहाँका क्या था मेरा? कुछ भी तो न था, फिर यहाँ तृष्णा क्यो जगती है इन बाह्य पदार्थोंके प्रति? उनके प्रति इतना अधिक लगाव क्यो बन

रहा ? बस यह लगाव ही इस संसारका मूल है। जो पुरुष मनुष्यजन्म पाकर भी शीलसे रहित हैं, विषयोमे आसक्त हैं, सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र गुणसे रहित हैं, रूपसे गर्वित है, मदोन्मत्त रहते हैं, उनका मनुष्य जन्म बिल्कुल व्यर्थ है। आगे मनुष्य होने लायक कोई कर्तव्य नही है, खोटे भवोमे गमन होगा। सो जो रूपादिकका मद करे सो मिथ्यात्वका चिन्ह है, जो अपने शरीरको निरखकर एक गौरव माने, मैं बडा सुन्दर हे, मैं बडा हू, मैं इन लोगोमे प्रमुख हू आदि किसी भी प्रकार से शरीरका सम्बन्ध करके गर्व करे तो उसके मिथ्यात्व है, सम्यक्त्व नही है। यह देह महा अपवित्र है, खून, मांस, मज्जा, मल मूत्र आदिकका पिण्ड है, इससे कोई ममता रखे तो यह उसका मिथ्यात्व है। वह कुछ भी करे धर्मके नामपर उपवास पूजा आदि परन्तु देहमें यदि ममत्वबुद्धि लगी है तो वे सब धार्मिक क्रियाकाण्ड करना बेकार है। सो जिनको देहमे आसक्ति है, विषयोसे प्रीति है वे पुरुष रत्नत्रयसे रहित हैं, उनके न शील है, न गुण है।

वायरणछंदवइसेसियववहारणायसत्थेसु।
वेदेऊण सुदेसु य तेसु सुयं उत्तम सील ॥१६॥

(२६) अनेक सुकलाओमे शीलकी सर्वोत्तमता—व्याकरण छंद दर्शनशास्त्र व्यवहार ये समस्त शास्त्र और जैनशास्त्र जिनागम इन सबको जानकर भी अगर शील हो साथमे तब

तो शोभा है और शील नही है तो ये सब कुछ पाकर भी व्यर्थ है। यहाँ शीलके मायने आत्माका ज्ञानस्वभाव है। सो आत्मा अपने ज्ञानस्वभावका ही आदर करे, तो कहो कि वह शीलका पालक है। सो जो पुरुष सब कुछ कलायें जानेपर आत्मशीलको जानेका तो वह सब कुछ उत्तम लगेगा और आत्मशीलका परिचय नही है तो वे सब उसकी धार्मिक क्रियायें भी उसके लिए व्यर्थ हैं।

सीलगुणमडिदाणं देवा भवियाण वल्लहा होंति।
सुदपारयपउरा णं दुस्सीला अप्पिला लोए ॥१७॥

(३०) शीलगुणमण्डित भव्योंका देवों द्वारा सत्कार और दुःशीलोंकी निकृष्टता—जो पुरुष शील और गुणसे मडित हैं, शील मायने स्वभावदृष्टि रखने वाले है और उसी आधारपर रत्नत्रय भी शुद्ध है तो ऐसा मनुष्य तो देवोको भी प्रिय है। जो आत्मा अपने आपको अकेला नही समझ सकता वह धर्म नही कर सकता। जो मानता कि मैं इतने कुटुम्ब वाला हू, ऐसे समागम वाला हू, ऐसी इज्जत वाला हूं, वह धर्मका पालनहार नही है। सर्वप्रथम यह श्रद्धा होनी चाहिए कि मैं आत्मा समस्त परद्रव्योसे निराला हूँ। यह बात जब चित्तमे हो तब तो वह धर्मका पात्र है और जब तक अपने एकत्वस्वरूपपर दृष्टि न हो कि मैं आत्मा सर्व परसे विविक्त ज्ञानमात्र हूं, तब तक वह धर्मका आराधक नही हो सकता, और जो शीलगुण

से मण्डित हैं, रत्नत्रयसे पवित्र चित्त हैं, सच्ची श्रद्धा है, सही ज्ञान है, आत्मामे ही रमनेका जिनका भाव है और रमते है वे शील और गुणोसे मडित हैं, ऐसे पुरुष बडे-बडे पुरुषोंके भी आराधनीय है, और जो बडे ज्ञानके पारको पा चुके हैं, ११ अग तक भी पढ़ चुके हैं, पर कोई जो शीलगुणसे शोभित नही हैं, आत्मस्वभावकी जिन्हे दृष्टि नही है तो ऐसे पुरुष कुशील हैं। वे विषयकषायोमे आसक्त हैं तो वे लोकमे बहुत ही न्यून है अर्थात् छोटे हैं, वे मनुष्यलोकमे भी किसीको प्रिय नही हैं तो फिर अन्य देव आदिकके प्रिय तो हो ही कहाँसे सकते हैं ? मुख्य बात यह है कि अपने आपकी शान्तिके लिए मुझे कुछ करना है। वास्तविक शान्ति तो मेरे स्वरूपमे होती। उसी स्वरूपका विकास करना है। यह बात जब तक चित्तमे न हो तब तक वह सुशील नही बल्कि कुशील है।

सव्वे विय परिहीणा रूवविरूवा वि वदिदसुवया वि।
सील जेसु सुसीलं सुजीविदं माणुसं तेसि॥ १८॥

(३१) सुशील पुरुषोंके मानुष्यकी सुजीवितता—जो पुरुष सभी शास्त्रोके तो ज्ञाता हैं, लेकिन हो विषय कषायोके प्रेमी तो वे मोक्षमार्गको नही निभा सकते। जो सर्व प्राणियोमे हीन हैं, छोटे हैं और कुल आदिकमे भी छोटे हैं और स्वय कुरूप हैं याने सुन्दर नही हैं, वृद्ध हो गए हैं और यदि उनकी शीलपर दृष्टि है, आत्मस्वभावको ओर उनका झुकाव है, स्व-

भाव उत्तम है, ऐसा जिनका निर्णय है और विषय कषायादिक की लीनता नही है तो उनका मनुष्यपना सुशील है अर्थात् ऐसे मनुष्य स्व और परका हित करने वाले है।

जीवदया दम सच्चं अचोरिय बंभचेरसंतोसे।
सम्मद्दंसण णाणं तओ य सीलस्स परिवारो ॥१६॥

(३२) **शीलके परिवारभूत गुणोका निर्देश**—यह शील-पाहुड ग्रथ है, इसमे आत्माके शीलका वर्णन है। आत्माका शील मायने स्वभाव। जो सहज अनादि अनन्त है उस शील की बात कह रहे है कि उस शीलके परिवार कौन-कौनसे हैं ? तो पहले कहते हैं (१) जीवदया—जो स्व और पर परजीवो मे राग करता है वह शीलवान है। वास्तविक दया क्या है कि जिस मिथ्या भ्रममे दुर्विचारमे जीव फँस रहे हैं वह विकार हटे और जैसा शुद्ध स्वरूप है उस स्वरूपमे अपना उपयोग लगायें तो वे पुरुष जीवदयाके सच्चे पालनहार है। जीवदया शीलका परिवार है। ऐसे कौन-कौन गुण हैं जो आत्माके स्व-भावको प्रकट करते है, बढते है, उनका जिक्र चल रहा है। जीवदया शीलके परिवारका है। (२) इन्द्रियका दमन—इन्द्रियविषयोमे प्रवृत्ति न जाय और उन विषयोसे विरक्ति रहे, उनपर दमन रहे तो ऐसा इन्द्रियदमन भी शीलका परिवार है। शील मायने आत्माका स्वभाव, स्वरूप (३) सत्यवृत्ति—सच बोलना, किसी प्राणीको जिसमे हिसा हो ऐसे वचन न

बोलना, तो यथार्थ बोले जाने वाले यथार्थ वचन ये शीलके परिवार हैं, याने कैसे गुण होने चाहिए जो कि आत्माके स्वभावके विकासमे मददगार रहे वही शीलका परिवार है। (४) चोरी न करना—बिना दी हुई चीज ग्रहण न करना यह शीलका परिवार है। (५) ब्रह्मचर्यसे रहना, किसी भी परदेह की प्रीति न करना, अपने आपके स्वभावकी दृष्टि बनाये रहना यह ब्रह्मचर्य शीलका परिवार है। (६) सतोष शीलका परिवार है, जिसके सतोष नही, बाह्य पदार्थोमे तृष्णा है वह कुशील है। जिसके तृष्णा छूटे और सतोष रहता है तो वह शीलका परिवार है इसी प्रकार (७) सम्यग्दर्शन यह तो शीलका मुख्य परिवार है। जैसा आत्माका वास्तविक स्वरूप है उस रूपसे आपका अनुभव करना यह शीलका परिवार है। (८) सम्यग्ज्ञान—जो पदार्थ जैसा है उसको उसी प्रकार जानना, विनाशीकको विनाशीक जानना, जो अपनेसे भिन्न है उसे भिन्न जानना तो यह यथार्थ ज्ञान शीलका परिवार है। (१०) तपश्चरण—इच्छावोका निरोध करना, इच्छावोका दास न बनना, ऐसा जो पवित्र परिणाम है वह कहलाता है तप, यह भी शीलका परिवार है। तो शीलकी दृष्टिसे ही आत्माकी रक्षा है अर्थात् ज्ञानस्वभावमात्र हू, ऐसी प्रतीति बननेमे आत्माकी रक्षा है।

सील तवो विसुद्धं दंसणसुद्धी य णाणसुद्धी य।

शीलं विसयाण अरी सीलं मोक्खस्स सोवाणं ॥२०॥

(३३) **आत्माका शील सहजचैतन्यस्वभाव**—हम आप सब कोई पदार्थ है यह तो निश्चित है जिसमे मैं हूँ, मै हू का भीतरमे सकल्प हाता है वह चीज तो अवश्य है कोई। अब वह वस्तु क्या है ? तो ज्ञानमय पदार्थ याने ज्ञानस्वरूप है वह वस्तु। जो मैं हू सो ज्ञानस्वरूप हू। अव इसका शील क्या है ? स्वभाव क्या है ? तो इसका शील कहो, स्वभाव कहो वह है ज्ञान। ज्ञान ही स्वभाव है। तो जिन्होने अपने इप ज्ञानस्वभावको पहिचाना वे ससारके दु खोसे पार हो गए। और जिन्होने अपने आत्माके ज्ञानस्वभावको नही जाना वे संसारमे दुःखी है। संसारमे रहनेसे लाभ क्या है ? सो बतावो। जन्मे, बच्चे हुए, जवान हुए, बूढे हुए, कुछ लोगोका सम्पर्क हुआ, मर गए, फिर दूसरे जन्ममे गए। यही यही करता रहता है यह जीव, इस जीवको लाभ क्या है संसारमे रहनेका। आज मनुष्य है तो कुछ अच्छा लग रहा है, शान्ति है, सुख है, जायदाद है, खाने पीनेके साधन हैं, पर ये सदा रहेगे, ऐसा तो नहीं है। मरकर मानो पशु बन गए, कीडा-मकोडा हो गए, तो उन जैसी जिदगी बितानी पडती। तो पूरा निर्णय होना चाहिए कि मैं आत्मा हूँ, ज्ञानस्वरूप हूं, इसका तो ज्ञानमय रहनेमे ही कल्याण हैं अन्य भाव बनानेमे कल्याण नही। रागद्वेषके भाव बननेसे किसी परपदार्थमें लगाव होनेसे

इस जीवको जन्म मरण करना पडता है ।

(३४) धन इज्जत परिजन आदिमे सारका अभाव— प्रथम तो यही अनुभव हो जाता है कि किसीमे मोह करनेसे इस जीवको कितनी अशान्ति मिलती है ? लोग तो यह चाहते है कि मेरेको धन मिले, मेरेको इज्जत मिले, मेरेको सनान मिले, पर धन पाकर सतुष्ट और शान्त तो नही रहता कोई । जो जितना धनी है उसकी दृष्टिमे उतना आरम्भ उतनी चीज, वैभव होनेसे उसकी सम्हालमे, उसके सोचनेमे उसको रात-दिन चिन्तित रहना पडता है । इज्जत मिले, प्रथम तो इज्जत कोई चीज नही, लोगोको जिससे कुछ फायदा होता हो, तो अपने फायदेके लिए उसके गुण गाते हैं । इज्जत नामकी कोई वस्तु नही, तो भी मान लो इज्जत है तो जितनी जिसको अधिक इज्जत मिली वह उतना ही परेशान रहता है । एक तो इज्जत को बनाये रहनेके लिए परेशान, फिर कोई बाधा आ जाय उस इज्जतमे तो उस समय परेशान । जैसे मानो कोई राष्ट्रका प्रधान था और फिर हार गया, इज्जत गई तो उसको कितना कष्ट होता है । तो यह सारा ससार मायाजाल है । इसमे जिसने चित्त लगाया वह दुःखी ही रहेगा, शान्ति पा नही सकता । यह भगवानका कहा हुआ वचन है । जो परपदार्थमे लगाव लगायेगा वह कभी शान्त नही रह सकता । परिजनकी बात देखो, कुटुम्ब बढ़ गया, लड़के हुए, पोते हुए, बच्चे बहुत

हुए, अब वे लडते है, झगडते है तो उनको समझाने बुझानेमे, उनकी व्यवस्था करनेमे वडा कष्ट उठाना पडता है और कोई समझता है नही अपने समझानेसे। जिसमे जो कषाय वमी है वह अपने कषायके अनुमार कार्य करता है। तो किस बातमें सार है यहाँ सो बताओ। कही सार नही।

(३५) आत्माके सार शरण तत्त्वकी आत्मामें ही उपलब्धि—सार कहाँ मिलेगा? अपना सार अपने आत्मामे मिलेगा। क्या सार? आत्माका जो सहज सत्य स्वरूप है, बस उस रूप अपना चित्त बना लें, उस रूप अपनेको मान लें। मैं सबसे निराला ज्ञानमय पदार्थ हू। एक अपने ज्ञानस्वरूपको सम्हाल लें तब तो शांतिका रास्ता मिलेगा, पर बाहरी पदार्थों मे लगाव और सम्हाल बनानेसे शान्ति कभो नही मिल सकती। जो आत्माका स्वरूप है उसका नाम शोल है। जैसे कहते ना शीलव्रत, तो वास्तविक शीलव्रत क्या है कि आत्माका जो ज्ञानस्वरूप है वही मैं हू, ऐसा जानकर सर्व पदार्थोंके ज्ञाता द्रष्टा रहो। किसी पदार्थमे इष्ट अनिष्ट बुद्धि मत लावो, यह है शोल का पालन। फिर जो व्यवहारमे कहते है कि शीलका पालन याने परपुरुष, परस्त्रीसे प्रीति न करना। तो शील नाम उसका इसलिए धरा कि अगर ब्रह्मचर्यसे नही रहते तो चित्त एकदम बेठिकाने हो जायगा। वह कुछ नही कर सकता। तो परमार्थ से शील तो ज्ञाताद्रष्टा स्वरूप आत्माको ज्ञानस्वरूप समझकर,

बस ज्ञानमात्र जाननहार रहे, किसीको न अपना समझे, न पक्ष मे आकर पर समझे, केवल ज्ञानमात्र, जो यह ज्ञानस्वभाव है सो ही शील है।

(३६) शीलकी निर्मलतपश्चरणरूपता व दर्शनरूपता—शील है सो ही निर्मल तप है। अपने आत्माके स्वभावकी ओर रमण और उसीमे ही खुश रहना, बाहरी पदार्थोंमे लगाव न रखना यह ऊँचा तप है। शरीरसे कोई बडा तप भी कर ले तो भी वह जीव शान्त नही रह सकता और अपने स्वभावमे रमनेका सतोष पा ले तो वह शान्त हो जायगा, पर ये बाहरी तप क्यो बताये गए ? इनका सस्कार बुरा है तो उन सस्कारो को धक्का देनेके लिए ये बाहरी तप करने पडते है। करना तो असली है अपने आत्माका स्वरूप जानकर स्वरूपमे रमना, तो यही शील है, और जो इस शीलका पालन करता है वही निर्मल तपस्वी है। जो शील है सो ही सम्यग्दर्शनकी शुद्धि है दर्शनविशुद्धि। क्या देखना ? बाहरमे कौनसी चीज देखनेके लायक है उसका नाम तो बताओ। आप कहेगे कि हमारे पास इतने सुन्दर बच्चे है, स्त्री है, ये सब देखनेके लायक हैं। अरे ये तो सब हाड मासके पिण्ड हैं। एक पर्याय मिली है, जन्म मरण करने वाले है, दु खी हैं, मगर इस शरीरकी भीतर की चीजको सोचें तो घृणा आने लगेगी। हड्डी, खून, मांस, मज्जा आदिका यह पिण्ड है। यह देखने लायक वस्तु नही है,

तो फिर क्या है देखने लायक वस्तु ? धन वैभव या बडी-बडी कोठियाँ ? इनसे इस जीवका क्या मतलब रहा ? कुछ दिन यहाँ है, मरकर जायेंगे, न जाने किस गतिमें जन्म लेंगे, क्या स्थिति पायेंगे, यह भी सारभूत नही है। तो क्या है चीज जो देखने लायक हो ? सुनो, आत्माका जो शीलस्वभाव है यह है देखनेके लायक। वहाँ ज्ञान जावे, उसे दृष्टिमे लिया जावे तो उससे अपना कल्याण है, बाहरमे कुछ भी चीज देखने लायक नही है।

(२८) **आत्माके शीलकी शुद्ध ज्ञानरूपता**—अच्छा बाहर मे जानने लायक क्या है सो बताओ ? हम किस-किसको जानें, किस किसका ख्याल करें कि हमको शान्ति मिल जाय ? खूब सोच लो। किस किसको ख्यालमे रखें कि हमारा कल्याण हो जाय, उसका नाम तो बताओ। ससारमे कोई भी वस्तु नही है ऐसी कि जिसका ख्याल रखनेसे आत्माका उद्धार होगा। कोई कहे कि धन-वैभव है उसका ख्याल करो, तो यह सब कोरा ख्याल ही ख्याल है, कल्पना है, भ्रम है, कोई भी वस्तु बाहरमे ऐसी नही जो कि ख्याल करने लायक हो, ज्ञान करने लायक हो ? किसको जानें ? एक तो सर्व पदार्थ विनाशीक हैं, मेरे साथ सदा रहने वाले नही हैं, फिर उनका ख्याल रखने से, ज्ञान करनेसे लाभ क्या मिलेगा ? फिर दूसरे वे पदार्थ भिन्न हैं, मेरे अधिकारकी कोई चीज नहीं है, फिर ख्याल करने

से क्या फायदा मिलेगा ? तो बाहरमे कोई पदार्थ ऐसा नही है कि जो ज्ञान करने लायक हो, ख्याल करने लायक हो जिससे ज्ञानकी शुद्धता बने । अपने आप ज्ञान हो वह बात दूसरी है, मगर लगकर परिश्रम करके पदार्थको जाने तो ऐसा बाहरमे कुछ नही है कि जो जानने योग्य हो । जिसके जाननेमे सिद्धि बने । तो फिर क्या है ज्ञानके लायक जिसके जाननेसे ज्ञानकी सिद्धि बनेगी ? वह है आत्माका शील । आत्माका स्वभाव ज्ञातादृष्टा मात्र । उसको निरखें तो संसारके सकट मिट जायेंगे । मुक्ति प्राप्त होगी, उस तत्त्वको देखो । तो शील ही ज्ञानकी शुद्धि है ।

(३८) आत्माके शीलकी अविकाररूपता—शील हो विषयोका शत्रु है । शील मायने स्वभाव । मेरा स्वभाव विषय कषाय करनेका नही है, क्योकि एक वैज्ञानिक बात है कि जो वस्तु पहले न हो और बादमे आये और फिर न रहे, तो वह वस्तु औपाधिक कहलाती है, नैमित्तिक कहलाती है । स्वभाव से होना नही कहलाता । जो बात स्वभावसे हुई हो उसे कोई मेटने वाला नही है । तो अब सोचिये कि जो पञ्चेन्द्रियके विषय करनेके भाव बने ये स्वभावसे बने क्या ? अभी हुए क्या ? थोडी देरमे मिट जायेंगे । कोई कषाय जगी, क्रोध, मान, माया, लोभ तो यह कषाय क्या स्वभावसे हुई ? स्वभाव से नही हुई । हुई और मिट जायगी । तो जो मिट जाय, जो

औपाधिक हो, विकार हो वह स्वभावमें नहीं होता। इसलिए स्वभाव तो अविकार है, स्वभाव तो विकारका दुश्मन है, स्वभावसे विकार होता ही नहीं है, ऐसा है यह शील।

(३९) **आत्मशीलकी मोक्षसोपानरूपता**—शील है सो ही मोक्षका सोपान है। जैसे किसी महलपर चढनेके लिए सीढियाँ चढनी पड़ती हैं ऐसे ही मोक्ष महलपर पहुचनेके लिए सीढ़ी क्या है? अपने स्वभावका मनन, स्वभावकी दृष्टि, स्वभावका ज्ञान। तो शीलकी बहुत बडी महिमा है। यहाँ शीलका क्या अर्थ है? आत्माका स्वभाव। आत्माका स्वभाव है ज्ञाताद्रष्टा रहना। तो ज्ञाताद्रष्टा रहनेका बहुत बडा महत्त्व है। जिन भगवानको हम पूजते हैं अरहंतको, सिद्धको, तो वे अरहंत, सिद्ध हुए कैसे? वे अरहत सिद्ध हुए हैं सर्व बाह्य पदार्थोंका लगाव छोडकर केवल एक अपने आत्मामें स्थित होनेसे। आत्मस्थितताका बहुत बड़ा प्रताप है।

जह विसयलुद्ध विसदो तह थावर जंगमाण घोराणं।
सव्वेसिपि विणासदि विसयविसं दारुणं होई॥ २१॥

(४०) **स्पर्शन रसनाके विषयोंके लुब्धके उदाहरणसे विषयविषकी यथार्थताका ख्यापन**—जैसे विषयके लोभी विषयोंके वशमें आकर प्राण खोते हैं, ऐसे ही विषयोंके मोही ये जीव अपने ज्ञान दर्शन प्राणका घात करते हैं। हाथी कैसे पकडे जाते हैं? कई उपाय होंगे, पर हाथी पकडनेका एक

उपाय मुख्य है जो कि प्रसिद्ध है। जंगलमे एक जगह बडा गड्ढा खोदा जाता है, बादमे उस गड्ढेपर बाँसकी पतली पंचें बिछाकर उसको मिट्टी आदिसे पाट दिया जाता है, उसपर कागजकी एक झूठी हथिनी बताई जाती है और कुछ दूरीपर कागजका एक नकली उस हथिनीकी ओर दौडता हुआ हाथी बनाया जाता है। इतना काम होनेके बाद अब जो जगलका हाथी दूरसे उस हथिनीको देखता है सो उसके रागवश और साथ ही उस दूसरे हाथीसे द्वेषवश हथिनीकी ओर दौडता है, वासनाका सस्कार तो उसके था ही सो उसे देखकर उसको गड्ढेका भी ज्ञान खतम हो जाता। वह यह नही पहिचान पाता कि यहाँ गड्ढा है। वह ज्यो ही हथिनीके निकट पहुचता त्यो ही वे पचे टूट जाती और वह गड्ढेमे गिर जाता। उसे कुछ दिन उस गड्ढेमे पडा रहने देते हैं और जब जाना कि यह दुर्बल हो गया सो कोई रास्ता बना लेते उसके निकालने का और हाथीपर बैठकर उसे अकुशके बलपर वश कर लेते हैं। कितने ही हाथी तो अपने प्राण गवा देते हैं। तो आखिर विषयोके वश होकर ही तो गंवाया। मछलियाँ पकडी जाती हैं तो पकडने वाले ढीमर लोग जालमे या बशीमे कोई लोहेका फंदा रखते हैं और वहाँ कुछ मांस चिपका देते हैं केचुवा वगैरह, अब वे मछलियाँ उस मांसपिण्डके लोभमे आकर वहाँ मुह बा कर जो दबाती हैं तो कठ छिद जाता है, इस तरहसे

मछली पकडी जाती है, मारी जाती है। तो आखिर रसना-इन्द्रियके वश होकर ही तो मछलियाँ अपने प्राण खो देती हैं। अब देखो ये पञ्चेन्द्रियके विषय कैसे विषरूप है? इच्छा होने पर कुछ समयको भी ये जीव धैर्य नही रखते, विषयोंके वश हो जाते और सर्व कुछ उपाय विषयके कर डालते हैं, मगर विषय सब अनर्थ हैं, असार है, बेकार हैं।

(४१) घ्राण चक्षु व कर्णके विषयोंके लुब्धोंके उदाहरणों से विषयविषकी यथार्थताका स्थापन—भ्रमर शामके समय किसी कमलके फूलमे बैठ गया, अब कमलकी यह प्रकृति है कि रात्रिमे बद हो जाता और सवेरा होते ही खुल जाता है, तो जैसे ही कमलमे वह भवरा आया गध लेनेके लिए और कमल बद हो गया तो उस भवरेमे यद्यपि इतनी शक्ति है कि काठको भी छेदे तो उसे छेदकर आर-पार निकल जाय, मगर गंधके लोभमे आकर गधकी सज्ञा रहनेसे उस फूलके कोमल पत्तोको भी नही छेद पाता। और उसके भीतर रहकर श्वास न मिलनेसे वह मरणको प्राप्त हो जाता है। तो यह भँवरा मरा तो कैसे मरा? एक घ्राणइन्द्रियके विषयमे मरा। तो विषय कितना विष है जिस विषयविषके पानसे जीवोका ऐसा घात होता रहता है। रोज-रोज देखते हैं आप कि बिजलीके बल्बमे कितने कीड़े आ जाते? वहाँ तो चाहे वे छिपकलीसे बच भी सकें, पर मिट्टीके तेल वाले दीपकमें तो पतिगे आ

आकर जलते ही रहते हैं, उसमे बचनेका क्या काम ? आखिर ये पतिंगे भी तो चक्षु इन्द्रियके लोभमे आकर अपने प्राण खो देते है। तो विषय कितना विष है ? इन विषयविषोमे जो लुब्ध जीव हैं वे अपने ज्ञान प्राणका घात करते हैं। हिरण व सांपको तो सुना ही होगा—हिरण पकडने वाले व सपेरे लोग बंशीकी मधुर तान या सितार वगैरा सुनते तो झट ये हिरण, सर्प आ-आकर उसके पास आकर मस्तीसे सुनते रहते है, अपनी कुछ लीलायें करते हैं, वहाँ मौका पाकर पकडने वाले लोग पकड लेते हैं। तो वहाँ जो हिरण, सर्प आदिक जीव शिकारियोके चंगुलसे आते तो उसका मूल कारण क्या है ? बस वही कर्णेन्द्रियके विषयका लोभ। तो ये विषय बडे विष हैं।

(४२) शीलविरोधी विषयविषकी अनर्थकारिता—विषयोके जो लोभी जीव हैं याने अपने शीलके खिलाफ चलने वाले जीव है वे सब अपने ज्ञानप्राणका घात करते हैं। सर्व विषोमे विषयोका विष बडा भयकर है। अगर यहांका विष खोले कोई तो वह एक बार ही तो इस देहका मरण करेगा, अगला जन्म जो पायगा वहाँ तो कुछ असर नही करता, यह विष तो एक जन्ममे असर करता है, मगर विषयोका विष, जो विषयोके लोभी हैं, विषयोमे आसक्त हैं उन्हे यह विषयविष, जन्म-जन्ममे दुखी करेगा। मरे फिर जन्मे, फिर मरे फिर जन्मे।

फिर विषयोका संस्कार रहा तो वे भव-भवमे दुःखी हैं । इससे उन विपयोसे प्रीति हटायें और अपने शीलस्वभावमे आयें । यह बात किसी दूसरेको नही कही जा रही, खुदके, अपने आत्माकी, अपने आपकी है । सभी लोग अपने-अपने आत्मापर दृष्टि देकर इसे घटित कर लीजिए कि इन विषयोके वशमे लगे रहे तो हमे सदा संसारके कष्ट भोगने पड़ेंगे ।

वारि एक्कम्मि य जम्मे सरिज्ज विसवेयणाहदो जीवो ।
विसयविसपरिहया णं भमंति संसारकांतारे ॥ २२ ॥

(४३) विषयविषपानसे अनेक जन्मोमे आत्मप्राणका घात—जो ऊपरके छंदमे बात कही थी उसीका स्पष्टीकरण कर रहे हैं कि विषकी वेदनासे जो जीव मरा तो एक जन्ममें ही मरा, मगर विषयरूपी विषसे जो जीव मरा वह ससारमे जन्म ले लेकर अनेक बार मरता है । ये विषय ऐसे विष है और तथ्य तो यह है कि जिसने अपने शील अमृतका पान नही किया, आत्माका स्वरूप अमूर्त ज्ञानमात्र, शरीरमे इस समय अवस्थित परमात्मतत्त्व, भगवान जैसा स्वभाव उस स्वरूपको जिसने नही देखा, उस स्वरूपका जिसने अनुभव नही किया वह पुरुष सुख तो चाह रहा है और भीतर यह सुख स्वरूप है उसका इसे पता है नही, सो यह बाहरमे सुख ढूढता है और पञ्चेन्द्रियके विषयोंको अपने सुखका साधन मानकर उनका सग्रह करता है । फल क्या होता है कि अपने शीलसे उल्टे

चल रहे ना, तो शीलसे उल्टी प्रवृत्ति होनेके कारण ऐसे कर्मों का बंध होता जो इस जीवको चिरकाल तक ससारमे भ्रमाते है। कर्म कर्म तो सब कहते हैं, पर कर्म असलमे चीज क्या है, इसके बारेमे जैनसिद्धान्तके जाननहारको छोडकर प्राय: पता नही। वे तकदीर है, कोई रेखा है, कोई भाग्य है, अनेक शब्दोसे बोलेंगे, मगर स्पष्टतया जैसे हम कहते हैं कि यह चौकी है, यह तख्त है ऐसी ही कोई वास्तवमे चीज है क्या कर्म ? तो जैनसिद्धान्त बतलाता है, कर्म हैं। जैसे ये दिखने वाले पदार्थ स्थूल हैं, पुद् ल हैं ऐसे ही स्थूल तो नही, किन्तु सूक्ष्म ऐसे पुद्गल हैं कि जो पुद्गल कार्माणवर्गणायें जीवके बुरे भाव का, शुभ अशुभ भावका निमित्त पाकर कर्मरूप बन जाती हैं और उन कर्मोंका जब उदय होता है तब इस जीवमे अक्स पडता है वहाँ इसके एक क्षोभ होता है जिससे यह जीव दु खी होता है। वे कर्म बँध कैसे जाते है ? तो उन कर्मोंके बँधनेका कारण है अपने शीलके खिलाफ चलना। हमारा शील स्वभाव है ज्ञान। उस ज्ञान शीलस्वभावके खिलाफ चलेंगे तो कर्म बँधेंगे। जन्ममरण करेंगे, ससारमे भ्रमण करते रहना पडेगा।

(४४) आत्मशीलकी उपासनासे ही आत्मकल्याण—भैया ! जब सारा उपाय, सारे साधन, सर्वस्व चीज हममे तैयार है, कल्याणकी बात किसी दूसरो जगहसे लाना नही है, हम ही स्वय कल्याणरूप हैं तो क्यो नही अपनेमे दृष्टि की

जाती है ? क्यों नही अपने आपको ज्ञानमें विभोर किया जाता है ? इन विषयकषायोकी भावनाको छोडकर अपने शीलस्वभावकी दृष्टि करनी चाहिए। धर्मका सार क्या है ? जितना जो कुछ भी पढा-लिखा जाता है वह अपने शीलस्वरूप आत्मा को जानकर शीलमे रम जानेके लिये। तो अपना एक निर्णय बनायें कि सारकी चीज बाहर कही नही है। सार चीज है तो मेरे आत्मामे ही है। मेरे आत्मासे बाहर मेरे कल्याणका कही स्थान नही है। ऐसा निर्णय करके अपनेमे इस स्वभावको देखें और ज्ञाताद्रष्टा रहकर अपने शीलकी सत्य पूजा करे, यह कार्य तो आत्माके कल्याणका है, बाकी बाहर कितना भी भटकते रहे, उससे आत्माका न उद्धार है, न अभी भी सुख शान्ति है। इससे एकचित्त होकर एक निर्णय बनाकर अपने ज्ञानस्वभावकी आराधनाका प्रयत्न करें।

णरएसु वेयणाओ तिरिक्खए माणुएसु दुक्खाइं।
देवेसु वि दोहग्गं लहंति विसयासता जीवा ॥२३॥

(४५) विषयासक्त जीवोंको चारों गतिके दुःखोंका लाभ—जो जीव विषयोमे आसक्त हैं वे नरकोमे बडी वेदनाओको पाते हैं, तिर्यंच और मनुष्यभवमे दु.खोको पाते है और देवगतिमे भी दुर्भाग्यको प्राप्त करते हैं, विषय मायने स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण इन ५ इन्द्रियोके विषयोका सेवना जैसे अच्छा छूना, अच्छा स्वाद लेना, गध लेना, रूप देखना, शब्द सुनना

और एक विषय मनका है, नामवरी चाहना, कीर्ति चाहना। तो इन विषयोमे जो आसक्त जीव हैं वे मोक्षको प्राप्त नही कर सकते, क्योंकि मोक्षका मार्ग तो अपने केवल आत्मस्वभावकी दृष्टि है किसी परका ख्याल नही, परका आश्रय नही किन्तु विषयोमे तो परपदार्थोंका आश्रय है, पराश्रित भावोसे, विचारोसे विकट कर्मबन्ध है, जिससे परविषयोके आसक्त जीव चारो गतियोमे दुःख प्राप्त करते हैं।

(४६) विषयासक्त जीवोको पुरस्कृत नरकगतिके दुःखोंके लाभका दिग्दर्शन—नरकोमे वेदना है। पहले तो नरकमे खुद जमीन ऐसी है कि उसपर रहनेसे वेदना होती है। बताया है कि हजार बिच्छुवोंके काटनेसे जितना दुःख होता है उससे भी अधिक दुःख नरककी भूमिमे है, पर एक बात समझें कि उस ही नरक भूमिपर देखनेके लिए देव भी जाते हैं, किन्तु देवोको दुःख नही होता। जैसे किसी कमरेकी फर्शमे या भीतमे बिजलीका करेन्ट आ जाय तो उसको छूने वालेपर करेन्ट आयगा, उसे दुःख होगा, किन्तु कोई रबडके चप्पल पहने हो जिसमे बिजली नही आती, उसे पहिनकर कमरेमे जाय तो उसे तो करेन्ट न आयगा। तो ऐसे ही समझिये कि नारकियोका वैक्रियक शरीर इस ढगका है कि वहाँ भूमिके छूनेसे दुःख होता है, किन्तु देवोका वैक्रियक शरीर ऐसा है कि उस भूमिपर पहुच जायें देखनेके लिए, समझानेके लिए, किन्तु उनको उस भूमिका

कष्ट नही है । तो यह नारकियोके पापका ही तो तीव्र उदय है कि जहाँ नरककी भूमिके छूनेसे ही इतने कठिन दु'ख होते हैं । ये दु.ख तो हैं ही वहाँ अन्न जल जरा भी नही है, भूख प्यास इतनी तेज होती है नारकियोके कि बताया है कि सारे समुद्रका जल भी पी ले तो भी प्यास न मुझे या सारा अन्न भी खा जायें तो भी क्षुधा न मिटे, मगर वहाँ न एक बूद जल है, न अन्नका एक दाना है । यहाँ तो मनुष्य लोग जरा जरासी बातमे कष्ट मानते है, यह भी हो, यह आवश्यकता पूर्ण नही हुई, पर यहाँ विवेक नही है । विवेक तो यह है कि जो भी स्थितियाँ आये उन सबमे धैर्य रखें, अपना ज्ञान स्वच्छ रखें । हो तो हो, न हो तो न हो, बाहरी पदार्थोंसे पूरा तो नही पडना, मगर मनुष्य गम कहाँ खाते ? तो यहाँ तो जरा-जरा सी बातमे विचार बनाते हैं, पर नरकोमे जो जीव पहुचता है उसकी बात तो देखो—चाह बहुत तेज, पर मिलता जरा भी नही । तो नरकगतिमे ऐसी तीव्र वेदना है, और भी देखो— वहाँ ठड गर्मी बेहद पडती है, इतनी कि यदि यहाँ पडे तो मनुष्य जीवित न रह सकें, इतनी तीव्र वेदना है वहाँ, मगर उनके शरीरके टुकड़े भी हो जायें, फिर भी वे मरते नही । वे टुकडे फिर ज्योके त्यो पारेकी तरह मिल जाते । जो नारकी मरना चाहते है उनके तिल तिल बराबर टुकडे कर दिए जायें तो भी न मरें, नरकोमे इतना तीव्र पापका उदय है और फिर

नारकी जीव एक दूसरेको देखकर तुरंत हमला करते हैं, मारते, छेदते, काटते, अग्निमे तपाते, करोतसे काटते, बडी तीव्र वेदना भोगनी पडती है और फिर इसके अलावा तीसरे नरकतक असुर कुमार जातिके देव जाकर उन्हे भिडाते हैं कि कही वे शान्त तो नही बैठे, ये लडते-मरते ही रहे, तो ऐसे कठिन दुःख हैं नरकोमे उन नरकोकी वेदना कैसे मिलती है ? विषयोमे आसक्त होनेसे। अब अपने आपपर घटा लीजिए कि हम विषयोमे आसक्त होते हैं तो नरकके दुःख भोगने पडेंगे।

(४७) विषयासक्तिके विवरणमे विषयोका निर्देश— स्पर्शनके विषयमे कठिन विषय है कुशील। ब्रह्मचर्य न रख सकना, कामवासना जगना, प्रवृत्ति करना, यह विषयोकी आसक्ति है। रसनाके विषयमे है स्वादपर लट्टू रहना, अच्छा स्वादिष्ट भोजन मिले उसीमे उपयोग रम रहा है। अरे स्वादिष्ट खाया तो क्या, साधारण खाया तो क्या, घाटी नीचे माटी, गलेके नीचे उतरा फिर उसका स्वाद वापिस आता है क्या ? वहां सब बराबर है, लेकिन मोही जीव रसपर आसक्त हैं। बडा उद्यम करें, खर्च करें, कितने ही प्रयत्न कर-करके विषयोका भोग भोगते हैं। घ्राणेन्द्रियका विषय क्या ? सुगंधित पदार्थ सूघना। चक्षुरिन्द्रियका विषय है रूप देखना। यही रूप देखना और ज्यादह चित्त उमडता है तो सिनेमाघर मे जाकर देखना। कर्णेन्द्रियका विषय है राग रागनीके शब्द

सुनना, मनका विषय है नामवरी। ये सभी विषय एकसे एक कठिन हैं, जिसपर विचार करें वही विषय बुरा लगता है। मनका विषय तो बडा भयंकर है। न शरीरको जरूरत है न आत्माको जरूरत है, पर यह मन नामवरी, कीर्तिकी चाहमे उलझा रहता है। मेरा नाम प्रसिद्ध हो, दुनियाके लोग मुझे जान जाये। अरे दुनियाके लोग क्या है और तुम क्या हो इसका सही ज्ञान तो बनावो। जीव, कर्म और शरीर इन तीन चीजोका यह पिण्डोला है, मायारूप है। जो अनेक पदार्थों से मिलकर बना है वह मायारूप कहलाता है, क्योकि वह सब बिखर जायगा। उसका फिर उस रूपमे अस्तित्व न रहेगा। जो कुछ भी दिखता है आँखोसे वह सब मायारूप है। आप नाम लेकर सोच लीजिए, ये भीत, किवाड, दरी, पत्थर आदि ये सब भी अनन्त परमाणुवोसे मिलकर बने हुए पिण्ड हैं, जो बिखर जायेंगे उनका अस्तित्व शाश्वत तो नही है, सब पर्याय रूप है, इसी तरह पशु-पक्षी, गाय, भैंस, मनुष्य आदिक जो कुछ भी दिखते हैं वे सब भी मायारूप है। तो मायामयी ससारमे इस परमात्मस्वरूप भगवान आत्माका क्या नाम ? तो ये पञ्चेन्द्रियके विषय और छठा मनका विषय, इनमे आसक्त रहने वाले जीव नरकगतिमे जन्म लेते है और ऐसी वेदनायें सहते हैं।

(४८) विषयासक्त जीवोंको पुरस्कृत कुमनुष्य तिर्यञ्च

कुदेव जीवनके दुःखोंके लाभका वर्णन—मोही जीव विषयोंके अनुरागवश तिर्यञ्च और मनुष्यमे भी उत्पन्न होते है तो खोटे दीन दुःखी बनते है और विषयोकी लालसा बनाये रहते हैं और उनको मिलते नही है। विषयोकी प्रीतिका बहुत भयकर परिणाम है। कभी यह विषयासक्त जीव देवगतिमे उत्पन्न हो तो नीच देव होगा। देवोमे भी यद्यपि आहार न करनेका, न कमानेके, शरीरमे रोग न होनेका तो आराम है, मगर मन तो उनका भी विकट है। नीच देव हो गए, जैसे आभियोग्य और किल्विषिक। आभियोग्य वे कहलाते हैं जिनको दूसरे देवोकी आज्ञासे हाथी, घोडा, हंस, गरुड आदिक सवारी रूपमे बनना पडता है। देखो कैसी कर्मलीला है, अगर कोई नीचा देव बिगड जाय कि हम नही बनते तो बताओ कोई दूसरा देव उसका क्या कर लेगा, क्योंकि वे देव मरते हैं नही आयुपूर्ण होनेसे पहले। उनको कोई शारीरिक रोग होता नही, उनके हाथ पैर छिदते नही, हड्डी वहाँ होती नही जो कि मारनेसे टूट जायें, मगर उनमे इतनी हिम्मत नही होती कि वे कुछ कर सकें, ऐसा ही उनका कर्मविपाक है कि जिस वाहनकी आज्ञा दी उस वाहनरूप बनना पडता तो बताओ उसमे उनको मानसिक दुःख है कि नहीं ?...है। किल्विषिक देव याने चाण्डालकी तरह नीच माने जाने वाले देव। उनको सब लोग घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं, वे तुच्छ देव हैं। तो देवगतिमे भी

जन्म हुआ विषयासक्त पुरुषका, तो नीच देव होता है। तो ऐसे विषयोमे आसक्त जीवोको इस भवमे भी आराम नही और परभवमे भी उन्हे कठिन दुःख होता है। इससे अगर अपना भला चाहिए हो तो विषयोसे विरक्त रहना ही उत्तम है।

तुसधम्मंतबलेण य जह दव्व ण हि णराण गच्छेदि।
तवसीलमंत कुसली खपति विसयं विस व खल ॥२४॥

(४६) शीलवान कुशल पुरुषों द्वारा विषयविषका परिहार—जैसे धान्य दल गया, चावल और छिलका दोनो मिले हुए है या जैसे चावल या गेहूको दांय कर ली गई वहां खलिहानमे और भुस व दाने इन दोनोका मेल है। अब जो किसान लोग हैं वे उन दानोको साफ करते है याने भुस उड़ाते हैं तो वह भुस या छिलका कहीसे कही चला जाय तो भी उन्हे पश्चात्ताप नही होता, क्योंकि वे उसको कुछ कीमत नही समझते, उन्हे तो प्रयोजन होता है चावल या गेहूके दानोसे, उनका ही वे सग्रह करते है, ऐसे ही जो विवेकी पुरुष हैं सो वे अपने आत्मामे देखते हैं कि सार चीज तो आत्माका ज्ञानस्वरूप है, और बाकी शरीर, कर्म, कषायादिक छिलका भुसा, जैसे सब असार चीजे है तो उन्हे फैकनेमे ज्ञानी विवेकी पुरुषोको कष्ट नही होता। जैसे तैल निकलनेपर खली अलग कर दी जाती है, धान्य कुटनेपर भुस अलग कर दिया जाता है, ऐसे ही ये पुरुष उन सब विषयानुरागोको फैक देते है, दूर कर देते हैं।

तो ज्ञानी हैं, तपश्चरण और शीलसे युक्त हैं वे इन्द्रियके विषयो को ऐसा फेंक देते हैं जैसे गन्नेमे से रस निकालनेके बाद उसका फोक फेंक दिया जाता है। अथवा जैसे दवाइयोकी जड़ें कूटने के बाद उसका रस निकालकर फोक फेंक दिया जाता है, ऐसे ही ज्ञानी पुरुष अपने ज्ञानस्वरूपको ग्रहण करते हैं और विकार भावोको, विषयानुरागोको अपने ज्ञानके बलसे हटा देते हैं। ज्ञानीकी दृष्टिमे विषय ज्ञेयमात्र रहते हैं, जान लिया कि ये भी पदार्थ है, ये भी जीव हैं यह पुरुष है यह स्त्री है। वह तो मात्र ज्ञाता रहता है, पर उसके विषयमे विकारभाव, वासना उनके उत्पन्न नही होती।

(५०) विषयासक्त पुरुषोंकी कुवृत्तिका आधार विभ्रम— जो आसक्त पुरुष हैं वे इन विषयोमे इन जड पदार्थोंमे सुखका ज्ञान करते हैं कि मुझको सुख यहीसे मिलेगा, विषयोमे सुख यहीसे मिलेगा, विषयोमे सुख मान रखा है तो उन विषयभूत पदार्थोंका ही सग्रह करते हैं, उनपर ही लडाई करते हैं। जैसे कोई कुत्ता सूखी हड्डी चबाता है तो उसे खूनका स्वाद आता है, मगर किसका स्वाद है वह ? जो सूखी हड्डी चबायी, उस सूखी हड्डीके चबानेसे खुदके मुखके मसूढोसे खून निकला उसका स्वाद आया और मानता है कि मेरेको हड्डीका स्वाद आया, ठीक इसी तरहसे सब विषयोकी बात समझिये। विषयोके भोगनेमे जितना भी आनन्द आता है वह सुख आत्माके आन-

न्दगुणका विकाररूप है। कही सुख विषयोमे से नही आया, बाह्य पदार्थोंमे से सुख नही निकला, सुख जो भी हुआ है वह आत्माका सुख स्वरूप है, स्वभाव है, वहांसे वह सुख पैदा हुआ है, मगर विषयोमे आसक्त जीव मानता यह है कि मेरेको सुख मिला है तो इन विषयोसे मिला है, इसलिए वह विषयोमें प्रीति करता है, विषयोमे आसक्त रहता है, लेकिन जो ज्ञानी पुरुष हैं उन्होने समझा है कि ज्ञानमे ही सुख है, ज्ञानमे ही आनन्द है अन्यत्र आनन्द नही। कभी कोई पुरुष आरामसे बैठा हो, किसीका ख्याल न आता हो, किसीपर क्रोध, मान, माया, लोभ न चल रहे हो, बड़े आनन्दमे घरके दरवाजेपर चबूतरेपर बैठा है, कुछ कर नही रहा, उससे कोई पूछता है कि कहो भाई कैसे बैठे ? तो वह बोलता कि बडे आराममे बैठे, बडे सुखसे बैठे। बताओ वहां वह किस बातका सुख भोग रहा ? वह उस समय किसी परपदार्थमे आसक्त नही हो रहा, अपने आपके ज्ञानस्वरूपमे चित्त रमे तो उसको आनन्द जगता है। तो यह ज्ञानी पुरुष इन विषयविकारोको तुच्छ जान कर उनको अलग कर देते हैं और अपने सारभूत सहज ज्ञानस्वभाव को ही उपासना रखते हैं।

वट्टेसु य खढेसु य भद्देसु य विसालेसु अंगेसु।
अगेसु य पप्पेसु य सव्वेसु य उत्तमं सीलं ॥२५॥

(५१) सर्वांगसुन्दर होनेपर भी शीलके विना अमनोज्ञ

प्रतिभासित होनेसे शीलकी उत्तमताका परिचय—कोई पुरुष कितना ही सुन्दर हो रूपमे तो भी उसके यदि शील नही है, क्रोध अधिक करना, घमड बगराना, छल कपट करना, लोभ भी बहुत है, दूसरोको ठगता है, आत्माके ज्ञानकी दृष्टि ही नही है तो बतलावो वह पुरुष भला लगेगा क्या ? कोई कितना ही सुन्दर हो, छलवान हो, लेकिन शील नही है तो सब व्यर्थ है, वैसे ही व्यर्थ है। प्रयोजनवान तो शीलस्वभाव है। कैसे अग सुन्दर हुआ करते हैं उसका कुछ वर्णन इस गाथामे है। जैसे उन मनुष्योके शरीरमे कोई अग तो गोल सुहावना लगता, जैसे हाथ गोल हो, पैर गोल हो, कुछ अग टेढे सुहावने लगते, जैसे भुजा एकदम गोल हो तो सुन्दर नही लगती, किन्तु कही ऊँचा, कही नीचा हो, जैसे कि पहलवानोकी भुजाका आकार, वह सुहावना कहलाता है, किसीके अग सीधे हो, सरल हो तो सुहावने लगते हैं। तो यहाँ बतला रहे कि कैसे ही सुहावने अग हो, मगर शील नही है तो सब बेकार हैं ? उनकी कोई कीमत नही है। शील स्वभाव है आत्माका। रूप प्रशंसनीय नही, किन्तु आत्माका शीलस्वभाव प्रशसनीय है। कैसे ही अग प्राप्त हो सबमे उत्तम तो शील है। शील मायने क्या ? शान्त रहना, कषायें न करना और अपने आत्माके ज्ञानस्वभावकी दृष्टि रखना, यह शील कहलाता है। तो शील ही उत्तम है, शरीरके अग उत्तम नही। शरीरके अंग क्या है ? हाड, मास,

मज्जा, चाम आदिका पिण्ड है, थोडा आकार या रूपका ही तो फर्क आ गया। तो रूप भी क्या? कुछ भी नही। एक दिखने मात्रकी वस्तु है, तो कैसी ही सुन्दरता हो, शरीरमे, किन्तु शील नही है तो वह भद्दा लगता है, इसलिए सब अंगो में, सारे शरीरमे, सारे ही पिण्डमे उत्तम चीज मिली शील, आत्माका ज्ञानस्वभाव।

पुरिसेण वि सहियाए कुसमयमूढेहि विसयलोलेहिं।
संसारे भमिदव्वं अरयघरट्टं व भूदेहिं ॥ २६ ॥

(५२) मूढ़ जीवपर कुमतव्यामोह व विषयव्यामोहकी विपत्तियां—जो मनुष्य विषयोके तो लालची हैं और खोटे मतमे मूढ है, मोहित है वे पुरुष अरहटकी घडोकी नाईं संसार के जन्म मरण करके घूमते रहते है। देखिये—ये दोनो बडी विपत्तियां है—(१) विषयोका लालच जगना और (२) कुमतोमे मोह व प्रेम उमडना। विषयोको इच्छा न रहे तो यह जीव आनन्दमे बैठा रहेगा, समताका सुख पायगा, ज्ञानका रस लूटेगा, पर जैसे ही विषयोमे लालसा हुई कि इसमे क्षोभ मच गया, अब यह अनेक परिणाम विकल्प बनाने लगा और उन विकल्पोसे ऐसी प्रवृत्ति करने लगा कि जिससे ससारका कष्ट ही कष्ट पाता है। तो विषयोकी तृष्णा हो जाना बहुत बडी भारी विपत्ति है और साथ ही यदि खोटे मदमे मोहित हो गया तो वह और भी बड़ी भारी विपत्ति है।

(५३) **जैनशासनमें निरापद होनेकी शिक्षा**—जैनशासन तो विषयोसे विरक्ति सिखाता है। इसके पर्व, क्षेत्र, पूजा विधि ये सब इस ढगके हैं कि जिनसे शिक्षा यह ही मिलती कि विषयोसे तो विरक्त हो और आत्माके स्वरूपमे लीन हो। ससारमे बाहर कही भी सार नही है। जिस भगवानको हम पूजते हैं, जिसकी मूर्ति बनाकर उपासना करते हैं उसकी मुद्रा ही देखो लोगोको कैसा उपदेश दे रही है। भगवानकी मूर्ति बोलती कुछ नही, मगर अपने आकारसे यह शिक्षा दे रही है कि भाई जगतमे कोई भी वस्तु देखने लायक नही है याने जिसका आश्रय करनेसे, देखनेसे कुछ आत्माको शान्ति मिले, ऐसा कुछ भी नही है। इसलिए सबका देखना बद करें और अपने आपमे अपनेको देखें। प्रभुकी मूर्ति यह शिक्षा दे रही कि जगतमे कोई भी क्षेत्र, कोई भी स्थान जाने लायक नही, इसलिए पैरमे पैर फसाकर पद्मासनसे विराजमान होकर यह शिक्षा दे रहे कि कहाँ जाना है? आत्मामे आवो और आत्मामे रमो, यहाँ ही सब कुछ मिलेगा। हाथपर हाथ रखे हैं, यह मुद्रा शिक्षा दे रही है कि दुनियामे कोई काम करने लायक नही, इसलिए किसको करनेका प्रयत्न करना? हाथपर हाथ रख-कर, निष्क्रिय होकर अपने आपमे ज्ञानकी ही क्रिया करते रहो। तो जैनशासनके क्षेत्रमे, मुद्रामे, पर्वमे, पूजाविधिमे निरन्तर विषयोसे विरक्त होने और आत्मामे लगनेकी शिक्षा

मिलती है।

(५४) **कुमतव्यामुग्ध जीवोंका संसारभ्रमण**—जैन शासन से बाहर देखो तो भगवानकी कथायें भी ऐसी मिलेंगी कि जिनमे प्रेम राग बसा है, भगवानके स्त्री भी बताते, लडके भी बताते, उन्हे हथियारसे सुसज्जित भी बताते। भला बताओ वहाँ विरक्त होनेकी शिक्षा कहाँसे मिलेगी? सो जो कुमतमे मूढ है, विषयोके लोलुपी है, ऐसे पुरुष संसारमे इस तरह घूमते हैं जैसे अरहटकी घडियाँ घूमती हैं। शायद अरहट आप लोगो ने देखा भी होगा, कुवेमे ऐसा गोल चलता रहता है जिसपर रस्सीमे घडे बँधे रहते है, पानी भरकर ऊपर लाते और डाल-कर फिर नीचे जाकर पानी भरकर लाते, फिर ऊपर डालते, कही कही टीनकी भी घडियाँ (डिब्बे) होती है, तो जैसे वे गोल गोल घूमती रहती है, ऐसे ही ससारमे वे जीव घूमते रहते हैं जो विषयोके तो लालची हैं और खोटे मतमे मुग्ध हैं। ऐसा जानकर हे विवेकी जनो! इस बातकी सावधानी रखो कि खोटे मतमे मोहित मत होओ, सही-सही तत्त्वका स्वरूप समझो और इन्द्रियके विषयोके लालची मत बनो। इन दो आपत्तियोसे हटे रहोगे तो सन्मार्ग मिलेगा और कल्याण होगा।

आदेहि कम्मगंठी जा बद्धा विसयरागरागेहिं।
तं छिंदंति कयत्था तवसंजमसीलयगुणेण ॥२७॥

(५५) **जीवके द्वारा कर्मग्रन्थि लगाना**—इस जीवने

विषयोके ढगमे रगकर अपने आप ही कर्मको गाँठ बाँधो। कहीं ऐसा नही है कि कर्म या कोई दूसरा पदार्थ हमसे जबरदस्ती विकार करा रहे हों। दूसरे पदार्थ तो निमित्तमात्र हैं। करता खुद है यह परिणमन अपना। सो निमित्तकी भी बात सुनो— आजकल लोग आश्रयभूतको निमित्त कहकर उस वास्तविक निमित्तका और आरोपित निमित्तका एक दर्जा मानते हैं और इस कारण आज परस्पर विवाद अथवा भ्रम भी रहता है। उसका मतलब यह है कि जैसे हमने क्रोध किया किसी पुरुष पर तो जो भीतर क्रोध नामका कर्म है वह तो है निमित्त और जिस पुरुषपर क्रोध आया वह है आश्रयभूत। आश्रयभूत कारण मजबूत कारण नही होता। अज्ञको कभी ऐसा लगता है कि यह आदमी होनेसे क्रोध हो गया, न होता आदमी तो क्रोध रखा कहाँपर ? और परमे या भीतर ही अपने क्रोधसे घुटता रहता। तो आश्रयभूत कारणमे अविनाभाव नही होता कि उस कारणके होनेपर क्रोध होता ही हो और उसके न होने पर क्रोध न होता हो। हाँ, क्रोधका उदय न हो तो क्रोध नही होता। तो निमित्त और आश्रयभूतमे तो अन्तर पडा ना ? तो यह जीव कर्मविपाकका निमित्त पाकर विषयको आश्रयभूत कारण बनाकर कर्मकी गाठ लगाता है।

(५६) निमित्त और आश्रयभूत कारणका अन्तर समझने के लिये एक दृष्टान्त—एक दृष्टान्त प्रसिद्ध है कि कोई वेश्या

गुजर गई, उसे लोग मरघटमें लिए जा रहे थे, तो उसका जो परिचित यार था कामी पुरुष वह उसको देखकर यह सोचता है कि यह अगर कुछ दिन और जीवित रहती तो मुझे इससे बडी मौज मिलती, और मुनि महाराज भी देख रहे थे, वे यह सोच रहे थे कि इसने इतना तो दुर्लभ मनुष्यजन्म पाया और विषयोमे अकारथ खो दिया और कुछ वहां लडैया कुत्ते भी थे तो वे सोचते थे कि ये लोग इसे व्यर्थ ही जला रहे हैं, यदि इसे यो ही छोड जायें तो हमारे लिए दो-चार माहका भोजन हो जाय। अब देखो वह तो एक ही वेश्या मृतक है, और तीन जीवोंके तीन तरहके भाव हुए। यदि वह वेश्या किसीके भाव का वास्तविक निमित्त होती तो सबके एकसे भाव होने चाहिए थे, किन्तु अलग-अलग भाव हुए तो वह वेश्या निमित्त कारण नही, किंतु आश्रयभूत कारण है। जिसके जैसा भाव है, वेश्या को उसने भावके अनुसार एक सहारा बना लिया है। वास्तविक निमित्त तो तीनो जीवोके साथ तीन तरहके अलग-अलग कर्म है। जैसे कामी पुरुषके साथ वेदकषायका उदय लगा है जिससे कामविकारका भाव बनता है तो उसने उसके अनुरूप आश्रय बना लिया। मुनि महाराजके चारित्रमोहकी प्रकृतियोका क्षयोपशम है तो उनके वैराग्यरूप परिणाम है सो उन्होने उस को अपने वैराग्यपरिणामका आश्रय बना लिया और कुत्तेको क्षुधावेदनीयका उदय है तो भूखमे उसने उसके अनुरूप आश्रय

बना लिया। तो इससे यह सिद्ध है कि आश्रयभूत कारण तो काल्पनिक कारण है, बाह्य कारण है, निमित्त नही है।

(५७) जीवके द्वारा कर्मग्रन्थिका लगाना व स्वयकी परिणामशुद्धि द्वारा कर्मग्रन्थिका खोलना—यह जीव जो बँधा रहता है, कर्मकी गांठसे बँधता है तो उसमे निमित्त कारण तो पूर्वकृत कर्मका उदय है, मगर बँधा कौन ? गाँठ किसने लगाया ? फसा कौन रहा ? यही जीव। मो यहाँ यह बतला रहे कि इसी जीवने तो उस रागकी, प्रीतिकी गाँठ लगायी तो यह ही जीव उस गाठको छोरना भी जानता है। जैसे किसी ने रस्सीमे गाठ लगाया तो वह रस्सीकी गाठको खोलना भी जानता है कि किस तरह खोली जाती है। सुनारने सोने चादी मे कोई टांका लगाया तो टाका भी गाठ है तो वह उसका खोलना भी जानता है कि इस जगहसे खोला जाता है ऐसे ही यह जीव अपनेमे गाठ लगाता है तो वह उस गांठको खोलना भी जानता है। गाठ लगती है विषयोके रागसे और खुलती हैं ज्ञान और वैराग्यसे। ज्ञान और वैराग्य ये दोनो शीलपर आधारित है। आत्माका शील है मात्र ज्ञाताद्रष्टा रहना, ज्ञानस्वभाव, जाननहार रहना। बस इसके आधारपर परिणाम विशुद्ध होते है, कर्मकी गाठ छूट जाती है।

उदधीव रदणभरिदो तवविणयंसीलदाणरयणाणं।
सोहेतो य ससीलो णिव्वाणमणुत्तरं पत्तो ॥२८॥

(५८) **तप व्रत-आदि रत्नोंकी शीलसे शोभा**—यह शील-पाहुड ग्रन्थ है। इसमे आत्माके शीलका याने स्वभावका वर्णन किया है। आत्माका धन है तो आत्माका शीलस्वभाव धन है। शीलको छोडकर, स्वभावकी दृष्टिको छोडकर यदि बाह्य पदार्थोंमे यह लगता है तो यह आकुलित रहता है सो सारी शोभा, समस्त विकास आत्माके शीलपर अवलम्बित है। एक दृष्टान्त यहाँ देते है कि जैसे समुद्र रत्नोसे भरा है, समुद्रका नाम रत्नाकर भी है, जिनमे रत्न पडे हो वह समुद्र है, पृथ्वीमे भी रत्न पडे हुए हैं, समुद्रमे भी रत्न पडे हुए है और उनमे रत्न क्या-क्या पड़े हैं ? अनेक प्रकारके रत्न जो कुछ होते है। तो समुद्र रत्नोसे भरा है और जलसे भी भरा है, अगर समुद्र का जल सूख जाय या जल न हो तो भले ही वे रत्न ऊपर आये हो, मगर उनका महत्त्व, उनकी शोभा जलके बिना नही बनती। ऐसे ही इस आत्मामे तप विनय, शील दान आदि रत्न भरे पडे है, पर रत्नोकी शोभा जैसे जलके बिना नही बढती, ऐसे ही यहा शील न हो तो इनकी शोभा नही है। शील हो तो उसीके प्रतापसे तप विनय आदिक भी मोक्षके कारण बन जाते हैं। देखिये धर्मके लिये सब लालायित है। कोई मदिर आता है, पूजा करता है, दर्शन करता है। धर्मके कोई कार्य हो तो इन कार्योंमे वह लगन रखता है।

यहाँ तक कि अपना सर्वस्व भी सौंप देता है, इतना तो बडा त्याग लोग करते, परिश्रम करते हैं, पर धर्मका आधार है आत्माका स्वभाव समझ लेना, अपना निरपेक्ष वास्तविक स्वरूप जान लेना, यदि स्वरूप नही जान पाया तो जितने भी हम कार्य करते हैं उनसे कुछ पुण्य तो बंध जायगा, मगर मोक्षका रास्ता न मिलेगा। तो मोक्षमार्ग पानेके लिए आत्म स्वरूपके जाननेका मुख्य कर्तव्य है। आत्मस्वरूपको जाननेके के बाद फिर जब भगवानकी भक्ति करेंगे तो उनका स्वरूप समझ लेंगे तो उत्तम भक्ति बनेगी। आत्माका स्वरूप जाननेके बाद व्रत, नियम, उपवास आदिक जो जो भी धार्मिक क्रियायें की जायेंगी तो वहाँ सही लक्ष्य बन जानेसे सही बनती जायेंगी और एक आत्मस्वरूपको ही न जाने और कुछ भी व्रत तप आदिक क्रियायें करता रहे तो उसका चित्त कहाँ बैठा है ? वह कही बाहर ही बैठा है, इसलिए उसे मोक्षका मार्ग नही मिलता। कुछ पुण्यलाभ तो मिल जायगा जितना पुण्यबन्ध हुआ उसके अनुसार, मगर मुक्तिका रास्ता आत्माके ज्ञान बिना तीन कालमे भी सम्भव नही।

(५६) **दुर्लभ मनुष्यजीवनमे आत्मशीलके परिचयकी नित्य आवश्यकता**—यह मनुष्यभव पाया तो सोचिये कितना दुर्लभ नरभव पाया ? अनन्तानन्त जीव हैं ससारमे, अनन्तानन्त तो निगोद जीव हैं, जिनका नाम सुनते तो हैं, पर वे

दिखते नही, सूक्ष्म है, हम आपके शरीरमे भी अनन्त निगोद पडे है और जा शकरकद आदिक है उनमे भी निगोद पड़े हैं। जितनी भी सब्जी हैं, फल है, जब ये बहुत छोटे रहते हैं तो इनमे भी निगोद पडे रहते हैं, बडे होनेपर तो नही रहते उन फलोमे। जो भक्ष्य हैं उनमे भी जब छोटे होते हैं तब तो उनमे अनन्त निगोदिया जीव रहते हैं, लेकिन बड़े हो जानेपर नहीं रहते। जहां यह पोल है वहांपर भी अनन्तानन्त सूक्ष्म निगोद ठसाठस भरे है। वे जीव क्या हैं? आखिर हम आप भी तो वैसे ही थे। हम आप भी अनादिकालसे अनन्तकाल तक निगोदमे रहे, वहासे निकल आये, प्रथम तो निगोदसे निकलना ही बहुत कठिन था। वहासे निकलनेके बाद पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, प्रत्येक वनस्पति हुए। तो ये भव भी पाना कठिन था। आप देखते जाइये कितना मजिल तय करके हम मनुष्यपर्याय मे आये, फिर एकेन्द्रियसे भी निकलकर दोइन्द्रिय होना कठिन था, फिर तीनइन्द्रिय होना कठिन था, फिर चारइन्द्रिय होना कठिन था, फिर असज्ञी पंचेन्द्रिय होना कठिन था, फिर सज्ञी पचेन्द्रिय होना तो और भी अधिक कठिन। उसमे भी नारकी रहे तो क्या, पशु रहे तो क्या, मनुष्य होना बहुत कठिन है। आज हम मनुष्य हो गए, उसीमे हमला कर रहे, कषायोंके वश रहे, परिग्रहको इतनी तीव्र धुन है कि बस वही-वही समाया रहता है और चित्त परेशान रहता है। इतना दुर्लभ

मनुष्यभव पाया तो यह निर्णय बनाकर चले जीवनमे कि मेरा सार, मेरा शरण, मेरा सर्वस्व मेरा यह परमात्मस्वरूप है। उसकी दृष्टि होगी तो समझो कि हमे सब कुछ मिल गया और एक अपने परमार्थ स्वरूपकी दृष्टि नही है तो ये जड पुद्गल यहा पडे ही हैं, मान लिया कि ये मेरे हैं, केवल कल्पनायें बना बनाकर अपना समय गुजार लेते हैं, पर सार कुछ नही है। सार तत्त्व तो अपने आत्मामे अपना स्वरूप है। सो उस स्वरूपपर हमने कर्मकी गाठ बना रखी थी उसे हम ही ने खोला और खोलकर जब हमने अपना स्वभाव पहिचान लिया, एक प्रकाशमात्र ज्ञानमात्र यह मैं आत्मस्वरूप हू, जब इस ज्ञानप्रकाशको जान लिया तो बस इस शीलके कारण अब आप जो भी धर्मके कार्य करें, दान, पूजा, व्रत, उपवास, सत्सग, स्वाध्याय आदि, उन सबमे अतिशय आ जायगा और मोक्षमार्ग के ढगसे आपकी दिशा चल उठेगी और एक आत्मज्ञान पाया तो जैसे अशुभ कार्योंका फल कुगति है, ऐसे ही शुभ कार्योंका फल कुगति है, पर मोक्षफल न मिलेगा। इसलिए शीलसहित जो पुरुष है वही इस अनुत्तर सर्वोत्कृष्ट निर्वाणको प्राप्त करता है।

सुणहाण गद्दहाण य गोपसुमहिलाण दीसदे मोक्खो।
जे सोधंति चउत्थं पिच्छिज्जंता जणेहि सव्वेहि ॥२९॥

(६०) मनुष्यगतिकी मोक्ष पुरुषार्थके कर्तव्यसे सफलता–

चार पुरुषार्थ बताये गए हैं—(१) धर्म, (२) अर्थ, (३) काम और (४) मोक्ष। जिनमे पहलेके जो तीन हैं वे तो साधारण हैं, संसारी जीव कर लेते है, पर मोक्ष नामका जो चौथा पुरुषार्थ है वह सच्चा पुरुषार्थ है और वे पुरुषके अर्थ हैं, पुरुष ही उसे सम्हाल सकते है। जैसे कुत्ते, गधे, पशु-पक्षी, कीडे-मकोड़े इनका तो मोक्ष नही होता, मोक्ष जिनका होगा मोक्ष पुरुषार्थ उनके हो सकता है। तो पुरुषोको ही मोक्ष होगा। आजके इस पंचमकालमे पुरुषोको भी मोक्ष नही होता, उसका कारण है हीन सहनन, पापका वातावरण बना हुआ है, सब अच्छी बातें हीनताकी ओर चल रही हैं। नही हो पाता मोक्ष, मगर मोक्ष आगे हो सके उसका विधान बना सकता है ना यह पुरुष? सम्यक्त्व तो पा सकता है, ज्ञान तो सही बना सकता है। तो ऐसे धर्मकी साधनामे यह अमूल्य भव पाकर प्रमाद न करना चाहिए।

जइ विसयलोलएहिं णाणीहि हविज्ज साहिदो मोक्खो।
तो सो सच्चइपुत्तो दसपुव्वीओ वि किं गदो णरयं ॥३०॥

(६१) विषयलोलुपीको ज्ञान होनेपर भी दुर्गति——ज्ञान एक बहुत बडा सहारा है, किन्तु कोई पुरुष चारित्र तो पाले नही, विषयोमे लालची रहे और ज्ञान उसने पाया हो तो क्या ज्ञानसे मोक्ष हो जायगा? यदि ज्ञानसे ही मोक्ष होता हो, सयम और चारित्रकी आवश्यकता न हो तो ११ अङ्ग ९ पूर्वके

धारी १०वा पूर्व भी सिद्ध करने वाले जैसे रुद्र, सात्यकीपुत्र, महादेव, इतने बडे ज्ञानी होकर आखिर अपने व्रतसे च्युत हुए और उन्हे खोटी गतियोमे जन्म लेना पडा। आज जितने भी अन्य लोगोके यहा बडे भगवानके रूपमे माने जाते हैं उन सबकी कथा जैनशासनमे भी है। विष्णु, महादेव, ब्रह्मा और देवी देवता सबकी कथा अपने यहा है और ये भव्य जीव भी है, और आगे मोक्ष भी जायेंगे। पहले जैनधर्मके वे उपासक भी थे, महादेव तो निर्ग्रन्थ दिगम्बर थे ऐसा अन्य लोग भी मानते है कि पाणिपात्र थे याने हाथमे ही भोजन करते थे, दिगम्बर थे, नग्न थे, तपस्वी थे और विशेषतया कैलाशपर्वत पर उनका तपश्चरण चलता था, उनको ११ अङ्ग ६ पूर्व तकका ज्ञान हो गया, जब १०वा पूर्व सिद्ध हुआ तो १०वें पूर्व मे बहुतसे देवी देवता सिद्ध होते हैं। तो देवियां आयी अपने सुन्दर शृंगारमे और महादेव दिगम्बर मुनिसे कहा कि आप जो आज्ञा दे दीजिए मैं वही काम करूँ, बस वे वहा विचलित हो गए और विचलित होनेके बाद फिर अपना विवाह भी कराया पर्वत राजाकी पुत्री पार्वतीसे, फिर और आगे यह कथानक बढता गया, खैर जो भी हो, मगर वह महादेव नि-ग्रंन्थ दिगम्बर गुरु थे, भले मुनि थे, और इतना विशाल ज्ञान पाया था, पर यहा यह बतला रहे कि ज्ञानसे ही तो मोक्ष नही मिलता, सयममे दृढ रहना, सयमकी साधना ठीक रहती

तो मोक्ष होता। तो जो विषयोके लोलुगी जीव है, और ज्ञान-सहित हैं तो सिर्फ ज्ञानसे भी मोक्ष नही होता जब तक कि विपयविरक्ति न हो और संयम साधन न हो।

जइ णाणेण विसोहो सीलेण विणा बुहेहिं णिद्दिट्ठो।
दसपुव्वियस्स भावो णणु किं पुणु णिम्मलो जादो ॥३१॥

(६२) शीलके बिना ज्ञानसे सिद्धिकी असंभवता—शील बिना सब बेकार है। अब व्यवहारशीलको देखो—व्यवहार शील मायने ब्रह्मचर्य। ब्रह्मचर्यका पालन हो तो मन ठिकाने रहता है, वचन ठिकाने रहते हैं, शरीर बल भी रहता है, उसके धैर्य रहता है, विवेक और ज्ञान भी रहता है। शील-रहित हो तो मनका बल भी खत्म, वचनबल भी नही रहता, देहबल भी नही रहता, आयु भी बहुत पहले नष्ट हो जाती है, लोकमे इज्जत भी नही मिलती। तो जब व्यवहारशीलका ही इतना प्रताप है तो फिर निश्चयशील अर्थात् आत्माका सहज-स्वभाव, उसकी दृष्टि हो, उसका आलम्बन हो, उसरूप अपनेको अनुभवे तो उसका प्रताप है मोक्ष होना। मोक्षमे यह आत्मा किस ढगसे रहता है कि न तो वहाँ शरीर है, न उसके साथ कर्म है, न उसमे विकल्प विचार तरग उठती हैं, केवल ज्ञान-मूर्ति आत्मा है। ज्ञानके द्वारा तीन लोक तीन कालके सर्व पदार्थ ज्ञानमे रहते है, पर जरा भी क्षोभ नही है, जरा भी वाछा नही है और न उस ज्ञान द्वारा जानकारीमे उनका कोई

लगाव है, शुद्ध ज्ञानस्वरूप है । ऐसा शुद्ध होना किस बातपर सम्भव होता है कि इस ससारमे यह आत्मा अब भी सबसे निराला है, इसका स्वरूप अलग है, यो ज्ञानमय स्वरूप रूपसे अपना अनुभव बनायें कि मैं तो ज्ञानमात्र हू तो उसको मोक्ष-मार्ग मिलेगा । धन्य हैं वे क्षण कि जिस क्षण इस जीवको यह अनुभव बने कि मैं ज्ञानमात्र हू । ज्ञानमात्र अनुभव बननेके बाद उत्कृष्ट शान्ति मिलती है । जरा अपना उपयोग भी कुछ अन्दर ऐसा ले जाकर निरखिये तो जरा कि मैं ज्ञानमात्र हू, केवल ज्ञानस्वरूप हू, तो अपनेको स्वय यह भान हो जायगा कि इस ज्ञानमात्र मुझ आत्माका दूसरा कुछ है ही नही । सर्व पदार्थ अत्यन्त भिन्न हैं । परिवार, धन-वैभव, इज्जत, प्रतिष्ठा ये सब उसे माया जचेंगे और इन वृत्तियोपर उसे हँसी आयगी कि कैसा तो यह अनन्त आनन्दका निधान परमात्मस्वरूप है और कहाँ यह संसारकी बातोमे फस रहा है ।

(६३) आत्मशीलका परिचय होनेपर शीलरुचि होनेसे **बाह्य तत्त्वोके परिहारमे अप्रमाद**—जब तक यह जीव इन विषयोका लालची है, इनमे आसक्त है तब तक इसे ज्ञान भी हो तो भी उससे शुद्धि नही हो सकती । शीलके बिना निर्म-लता नही जगती । बडे-बडे ज्ञानी हुए, मगर सयममे जब तक नही आये, अपने स्वभावमे मग्न जब तक नही हुए तब तक उनको शान्तिका रास्ता नही मिला । तो इस तत्त्वको पानेके

लिए जरूरत है ज्ञानकी। हमे अपना ज्ञान ही न हो तो हम अपने स्वभावमे कैसे टिक सकते ? तो जिस जिसपर प्रेम होता है उसके लिए आप अपना सर्वस्व समर्पण कर सकते हैं। जैसे आपका कोई बच्चा बीमार हो जाय तो आप उसके पीछे अपना सारा धन खर्च करनेको तैयार हो जायेंगे। यहाँ तक कि कर्ज लेकर भी उसका उपचार करायेंगे, क्योंकि आपकी दृष्टिमें आपका बच्चा ही सब कुछ है, पर तथ्य नही है ऐसा। तथ्य यह है कि इस आत्माके लिए आत्माका सही ज्ञान होना यही सब कुछ है। तो जिसने इस ज्ञानका अनुभव करके आनन्द पाया उसका दृढ निर्णय है कि मेरा शरण यह ज्ञानस्वरूप आत्मा स्वय है। उसका प्रकाश मिले, उसका ज्ञान मिले, चाहे उसके लिए ही अपना तन, मन, धन, वचन सर्वस्व कुर्बान हो जाय, पर मेरे आत्माका वास्तविक स्वरूप मेरे ज्ञानमे आ जाय तो समझो कि मैंने सर्वस्व प्राप्त कर लिया। आखिर मरनेके बाद यह झमेला एक सूतमात्र भी नही जाता। थोड़े दिनोका जीवन है और अनन्तकालकी यात्रा पडी है। समय तो अम-र्याद है, किसी दिन समय खत्म होगा क्या ? कभी खत्म न होगा। इस लोकको तो कही हद मिल जायगी कि इसके बाद दुनिया नही है, मगर समयकी हद नही है कि इसके बाद अब समय नही है। इतने समय तक हमे रहना है आगे भविष्यमे अनन्तकालके लिए और यह जो १०-२०-५० वर्षोंका जीवन

मिला इसमे ही यहाके मिले हुए समागमोको हम अपना सर्वस्व समझ लेते है, राग करते हैं, इसीमे उलझ जाते हैं तो उसके फलमे हमारे भविष्यका अनन्तकाल सारा दुर्गतियोमे जायगा। तो आज क्यो नही चेतते, एक दृढ़ सकल्प बना लें कि मेरे लिए मेरे आत्माके सिवाय सब कुछ तुच्छ है। धन-वैभव कुछ चीज नही है। गुजारेके लिए गृहस्थीमे रहनेके कारण उमका उपाय बनाया जाता, उसका इतना ही प्रयोजन है कि ये प्राण इस शरीरमे टिके रहें तो मैं सयमकी, ज्ञानकी, चारित्रकी, धर्मध्यानकी साधना बनाये रहूँगा, केवल इस ध्येयसे थोडा बहुत प्रयत्न है गृहस्थका, पर ज्ञानी गृहस्थ केवल एक निज ज्ञानस्वरूपसे ही रुचि रखता है, समारके किसी भी झमेलेमे वह अपनी रुचि नही रखता। तो शील ही आत्माका शरण है। उस आत्मस्वभावका ज्ञान करें और उसकी रुचि बनायें, उसके लिए सत्सग और स्वाध्याय बहुत ऊँचे तप हैं।

जाए विसयविरत्तो सो गमयदि णरयवेयणा पउरा।
ता लेहदि अरुहपयं भणियं जिणवड्ढमाणेण ॥३२॥

(६४) विषयविरक्त शीलरुचिक ज्ञानीका प्रताप—आत्माका शरण आत्माका शील है। शील अर्थात् स्वभाव। आत्माका अपने आप अपनी सत्ताके कारण जो स्वरूप पाया जाता है वह आत्माका शील है, वह क्या है? प्रतिभास। चेतना, चैतन्य, इस शीलकी जो दृष्टि रखता है, इस शीलकी

जो रुचि रखता है वह पुरुष ही निर्वाण पा सकेगा । शीलसे रहित पुरुष निर्वाण न पा सकेगा । इस गाथामें शीलकी महिमा बतायी जा रही है । कौन सा शील ? परमार्थशील । यद्यपि लोकरूढ़िमें शील ब्रह्मचर्यका नाम है और वह भी कुशीलसेवन न करना, विषयप्रसग न करना, इसमें रूढ है कि वह सहयोगी है । यदि कोई व्यवहारशील ही नही रखता और कामविकारके वश होकर परस्त्री वेश्या आदिके विकल्प बनाये रहता है उस पुरुषको तो निर्वाणके रास्तेका भी अधिकार नही । सो व्यवहारशील तो होना ही चाहिए, पर इतने मात्र से निर्वाण नही मिलता, किन्तु जो परमार्थशील है, आत्माका ज्ञानस्वरूप है उस अपने आपको यह मैं ज्ञानमात्र हूं, इस प्रकार का अवलोकन करना, अपनेको अनुभवना यह है शीलका पालन । उस इस शीलका ऐसा माहात्म्य है कि जो भी विषयविरक्त शीलधारी पुरुष कदाचित् पहले आयुबंधके कारण नरक मे गया हो तो नरकमे भी इस शीलकी दृष्टिके कारण दुःख कम हो जाते हैं । जैसे यहाँ ही अनेक लोग हैं, एकसा बुखार है, एकसा कोई रोग है, फिर भी कोई मनुष्य तो बड़ी बुरी तरहसे तड़फते हैं और कोई शान्तिसे पड़े रहते हैं, किसीमे धीरता नही है किसीमें धीरता है । तो यहां कारण क्या रहा ? ज्ञानका विकास । जिसने अपने ज्ञानका उपयोग नहीं किया, घबड़ाया, रागद्वेष मोहभावमे बढ़ा वह अधीर हुआ, तो यहीं

भी तो अन्तर पाये जाते हैं। तो कोई ज्ञानी जीव पूर्वकृत कर्म के उदयसे नरकमे गया हो तो शीलके प्रतापसे, उस ज्ञानस्वभावकी दृष्टिके प्रतापसे वहां भी दुःख कम हो जाता है। दुःख का सम्बंध मान्यतासे अधिक है, बाहरी बातोसे नही है। बाहरी बात एकसी बीत रही है, फिर भी कोई दु.ख अधिक मानता है कोई कम। तो माननेका दुःख होता है। उन नरको मे कोई ज्ञानी जीव है शीलरुचिक है नारकी तो वह अपने ज्ञानबलके कारण उसकी मान्यता कम रखता है, ज्ञाताद्रष्टा रहता है, जानता है कि यह कर्मोंका उदय है, ऐसा हो रहा है इस ज्ञानबलसे उसका दु ख कम हो जाता है।

(६४) **आत्मशीलकी महिमा**—और भी शीलकी महिमा देखो—किसी पुरुषने पहले तो नरकायु बाध ली हो, बादमे सम्यग्दर्शन हो और तीर्थंकर प्रकृतिका भी बध कर लेवे तो ऐसा पुरुष जब मरणकाल आयगा तो उसके यदि क्षायिकसम्यक्त्व नही है तो सम्यक्त्व मिटेगा, नरक जायगा और वहा फिर तुरन्त ही सम्यक्त्व हो जायगा और अगर क्षायिक सम्यक्त्व है तो सम्यक्त्व न छूटेगा और सम्यक्त्व साथ लेकर नरक जायगा। नरकायु व्यतीत करनी पडेगी। देखो नारकी है वह जीव, पर सम्यग्दृष्टि है, तीर्थंकर प्रकृतिका बध वहा भी चल रहा है। तीर्थंकर प्रकृतिका बध मनुष्यगतिको छोडकर अन्य गतियोमे प्रारम्भ नही हो पाता। प्रारम्भ मनुष्य ही

करते है, पर अन्य गतियोमे प्रारम्भ किए हुए तीर्थङ्कर प्रकृति का बंध नवीन-नवीन चलता ही रहता है। वह नरकमे है, तीर्थंकर प्रकृतिके परमाणु भी, वर्गणायें भी बँध रही हैं, अपने ज्ञानबलको सम्हाले हुए है जिससे दु:ख कम है, मगर कुटना पिटना वहा भी जारी है। वह तो नरकभूमिका रिवाज है ऐसा, किन्तु अन्तमे जब ६ महीने बाकी रह जाते उस नरक आयुके, तबसे यहां तो जिस नगरीमे उत्पन्न होना है वहां रत्न-वर्षा होने लगती है और नरकोमे देवता लोग पहुंचते है सो वहां एक कोट रचते हैं जिसमे वह नारकी आरामसे रहता है, उसे कोई सता नही सकता, और वह नरकायु पूर्ण करके यहां तीर्थंकर भवमे आता है। मनुष्य हुआ तीर्थंकर प्रकृति वाला और उसके गर्भकल्याणक, जन्मकल्याणक ये सब मनाये जाते हैं, तो यह सब किसकी महिमा है ? शीलकी।

(६६) **आत्मशीलकी ही सर्वोत्कृष्ट तत्त्वरूपता**—अच्छा, जरा अपने आपमे सोचकर जरा विचार तो करो कि दुनियामे ऐसा कौनसा पदार्थ है कि जिस पदार्थको हम ध्यानमे रखे रहें तो हमको निराकुलता मिलती रहेगी ? आप नाम ले लेकर सोच लो, क्या घर ऐसी चीज है कि जिसको आप दिलमे बसाये रहेगे तो आपको शान्ति मिलती रहेगी ? नही है ऐसा। घर मे रहकर भी आप गुस्सा करते हैं, व्यग्र होते है, झुंझलाते है बिना खाये चले जाते हैं, वहांपर भी कोई आकुलता व्यग्रता

है ना ? कौनसी वस्तु है ऐसी जगतमे जिसका ध्यान रखे तो निराकुलता हो। स्त्री, पुत्र, परिजन, भाई बन्धु आदिक कोई नही है ऐसे कि जिनको ध्यानमे रखे रहे तो निराकुलता हो ? ये बातें सब जानते हैं। अधिक बतानेकी जरूरत नही है, क्योंकि आप सब लोग उनको भोग रहे हैं। तो कौनसा पदार्थ ऐसा है कि जिसका ध्यान रखें कि निराकुलता हो ? कोई पदार्थ न मिलेगा। एक आत्माका शील, आत्माका स्वभाव, आत्मस्वरूप ही एक ऐसा सार तत्त्व है कि जिसको ध्यानमे लें तो निराकुलता बनी रहे, और इसके बाद फिर अरहत सिद्ध का स्वरूप उसको ध्यानमे लें। तो देखिये परमार्थतः जब भक्ति हो रही तब पूर्ण निर्दोषता या पूर्ण वीतरागता नही जग रही, मगर प्रभुकी भक्ति इसलिए धन्य है कि उनके गुणोका स्मरण करनेके प्रभावमे हम अपने आपके आत्माके शील तक पहुच जाते हैं। सर्वोत्कृष्ट तत्त्व है तो आत्माका शीलस्वभाव ज्ञान-स्वरूप। इसकी दृष्टि बनानेकी सोचिये। इस आत्मस्वभावमे रमनेका प्रोग्राम बनावें, बाकी तो यह सब झमेला है और बेकार है। ज्यो ज्यो दिन बीतते जाते हैं त्यो-त्यो कुछसे कुछ बदलकर खटपट चलते रहते है। कोई सार नही है लगावमे। इस जीवनका लक्ष्य बनावें कि हम अपने आपके शीलस्वभावमे रमते रहें। बाहरमे कुछ भी पदार्थ रम्य नही है, इसलिए इन सबसे हटकर आत्मामे ध्रुव सदा रहने वाले एकस्वरूप स्वभा-

वत: जिसमे प्रतिभास प्रतिभास ही परिणाम चलतो है उस स्वभावको अपना मानो कि यह मैं हू और इस स्वभावमात्र आत्माका जगतमे है क्या, ऐसा जानें और इस शीलके प्रति रुचि जगे । इस ही की यह महिमा है कि तीर्थंकर होकर मोक्ष गए । तीर्थंकर भी अरहत हैं, पर वे विशेष हैं तीर्थ करने वाले, पर अन्तिम मजिल है सिद्धगति याने गतिरहित आत्मपदकी प्राप्ति । यह शुद्धता शीलस्वभावकी दृष्टिसे होती है ।

एवं बहुप्पयारं जिणेहि पच्चक्खणाणदरसीहि ।
सीलेण य मोक्खपयं अक्खातीदं य लोयणाणेहि ॥३३॥

(६७) शीलसे ही आत्माके सहज अतीन्द्रिय आनन्दकी संभूति—जिनेन्द्रदेवने शीलके द्वारा मोक्ष पदका लाभ बताया । वह मोक्षपद कैसा है और शीलपद कैसा है जो इन्द्रियके द्वारा नही जाना जाता, फिर भी शील अतीन्द्रिय आनन्दमय है । जिसके इन्द्रिय नही उसको अद्भुत अलौकिक परमार्थ आनन्द प्राप्त होता है । लोगोको यह भ्रम है कि आनन्द किसी बाहरी पदार्थसे मिलता है । किसी भी बाहरी पदार्थसे कुछ भी मेरे आत्मामे त्रिकाल आ ही नही सकता । स्वरूपकी पर्याय ही ऐसी है, मेरेमे जो आयगा वह मेरेमे से आयगा, किसी दूसरे पदार्थमे से निकलकर न आयगा और फिर ये इन्द्रियके विषय-भूत जड पदार्थ इनमे आनन्द भरा ही कहाँ है ? आनन्दगुण तो चेतनमे हुआ करता है, जड़ पदार्थोंमें आनन्दगुण होता ही

नही, फिर वहासे आयगा आनन्द इसका तो विचार ही न करना, कुछ अवकाश ही नही है सो बाह्य पदार्थोंसे आनन्द नही मिलता। आनन्द तो स्वयं आत्माका स्वरूप है। जैसे यह आत्मा अपने स्वरूपसे सहज प्रतिभासमात्र है ऐसा ही उपयोग बने तो आत्माको आनन्द अपने आप है और यही आनन्दगुण उपाधिरहित होनेपर सिद्ध भगवन्तमे एकदम अनन्त प्रकट है। तो यह आत्माका शीलपद और आत्माका वह मोक्षपद यह इन्द्रियसे अतीत है और अतीन्द्रिय आनन्दसे भरा हुआ है, तो यह बात जिनेन्द्रदेवने बताया, जिसका ज्ञान और दर्शन अनन्त है ऐसे सर्वज्ञदेवकी दिव्यध्वनिमे यह बात है। वह मनुष्य धन्य है जिसकी रुचि आगमके प्रति बढती हुई है और प्रभुताके लिए भीतरसे एक उत्सुकता लग रही। तो जो अपने आपमे हो सो ही मिलेगा। मुझे बनना नही है कुछ, कुछ भी भाव बनें। आराध्य सिद्ध भगवन्त अक्षातीत हैं और यहां आत्माका यह शील अक्षातीत है।

(६८) आत्मशील निरखकर विषयविरक्तिपूर्वक आत्माचरणद्वारा समृद्धिसंपन्नता—आत्माका स्वभाव और सिद्धभगवान यह एक ही तो बात है। स्वभाव ढका है। उसका नाम है ससारी, और स्वभाव ढका न रहा, प्रकट हो गया पर्यायमे, उसका नाम है सिद्ध भगवान। इसी प्रकार तो मम स्वरूप है सिद्ध समान। सिद्ध भगवानके समान अपना स्वरूप

है, तो उसकी ओर दृष्टि करें। यहा बच्चोंके कारण अपनेको आप समझते कि मैं बच्चे वाला हू, बडा अच्छा हूं या धन-वैभवके कारण बडा समझते, मेरी अच्छी स्थिति है ऐसा समझते, पर ये तो सारे विरूप हैं, भ्रम हैं, इनमें तत्त्व न मिलेगा। आत्माका शीलस्वभाव जानकर उसका लक्ष्य करके अपनेमे गौरव अनुभव करना कि मैं यह हूं परमात्मतत्त्व, उसको प्राप्ति होगी स्वरूपकी, लेकिन जो विषयोमे विरक्त हैं वे ही पा सकेंगे। जो विषयोमे आसक्त हैं वे इस स्वरूपको नही प्राप्त कर सकते। देखिये छोडना तो सबको पडना है, सब कुछ छोडना पडेगा, पर कोई ज्ञान करके यहा ही जिन्दा अवस्थामे त्याग करके या उस बीच रहकर छोड देना। ममता त्याग दी वह भला है और मरकर छोडना ही पडा दु खी होकर तो वह छोडना क्या कहलाया ? आगे जाकर दु:खी होना पडेगा।

(६६) मरणसे पहिले ही विषयममत्व त्यागनेमें लाभ— एक वेदान्तकी टीकामे कथा आयी है कि कोई एक भगिन मल से भरा हुआ टोकना लिए जा रही थी, खुला हुआ मल होनेसे बहुतसे लोग कष्ट मान रहे थे सो एक दूकानदारने उसको ढाकनेके लिए एक साफ स्वच्छ चमकीला तौलिया दे दिया यह सोचकर कि जिससे किसीको वह मल देखकर कष्ट न हो। जब तौलिया ढककर लिए जा रही थी वह भगिन मलका टोकना तो उसे देखकर तीन व्यक्ति उसके पीछे लग गए। सोचा कि

देखना चाहिए कि इस टोकनेके अन्दर कौनसी ऐसी चीज है जिसको बहुत स्वच्छ चमकीले तौलियासे ढाक रखा है। सोचा कि इसमे शायद कोई बढिया चीज ही होगी। सो जब तीनो व्यक्ति भगिनके पीछे लगे हुए थे तब उन्हे देखकर भगिनने पूछा—आप लोग हमारे पीछे क्यो लगे हैं ? तो वे व्यक्ति बोले— हम लोग देखना चाहते हैं कि इस टोकनेमे तुम क्या लिए जा रही हो। तो भगिन बोली—अरे इसमे तो मल है, तुम क्यो बेकारमे पीछे लगे हो ? तो इतनी बात सुनकर उन तीनोंमे से एक व्यक्ति लौट गया। उसने समझ लिया कि यह ठीक कह रही। दो को अभी भी विश्वास न आया। फिर भी पीछे लगे रहे। फिर भगिनने पूछा—भाई तुम मेरे पीछे क्यो लगे हो ? तो वे बोले—हम तो तुम्हारी बात नही मानेंगे, हमे इसे खोलकर दिखा दो। देख लेंगे तब विश्वास हो जायगा और लौट जायेंगे। भंगिनने तौलिया उघाडकर दिखा दिया, उसे देखकर दूसरा व्यक्ति भी वापिस लौट गया। तीसरा व्यक्ति अभी भी उसके पीछे लगा रहा, उसे अभी भी विश्वास नही हुआ। फिर भगिन वोली—भाई तुम अभी भी मेरे पीछे क्यो लगे हो ?-तो वह तीसरा व्यक्ति बोला—हमने अभी दूर से ही तो देखा, अभी विश्वास हमे नही हुआ, हम तो भली-भाँति सूंघ-मांघकर परीक्षा करके देख लेंगे तब वापिस लौटेंगे। आखिर भगिनने तौलिया उघाड़ा, उस व्यक्तिने भली-भाँति

सूंघ-सांघकर देख लिया तब वापिस हुआ। तो उस वेदान्तकी टीकामे यह दृष्टान्त देकर बताया कि यहाँ विषयोके लोलुपी पुरुष कुछ तो ऐसे हैं कि जब एकदम परेशान हो जाते या मरण कर जाते तब ये विषय उनसे छूटते है, कुछ ज्ञानी ऐसे भी हैं कि जो उपदेश मात्रसे ज्ञान जगता है और छोडते हैं, ऐसे ही इन भव्य जीवोमे कुछ तो ऐसे है कि भोगोके भोगे बिना वस्तुके स्वरूपको जानकर अपने आत्माके स्वरूपको, स्थितिको, भविष्यको, भूतको सब विधियोसे पहिचानकर विरक्त होते हैं और आत्मामे शीलमे स्वभावमे, स्वरूपमे रमकर निर्दोष रहा करते हैं। तो कोई पुरुष ऐसे होते हैं कि इन विषयोको भोगकर बादमे विरक्त होकर त्याग देते है वे दूसरे मित्रकी तरह हैं तो कुछ ऐसे विषयासक्त होते हैं कि मरणपर्यन्त तक भी नही छोड सकते हैं, मरेंगे तब ही छूटेंगे। तो आप यह बतलावो कि मरणके बाद तो फैसला हो ही गया कि यहाँका कुछ साथ न रहा, अब इतने थोडेसे समयके लिए वैभवोमे परवस्तुवोमे ममता बढ़ाना यह तो अगले भवके लिए दुःख मोल लेना है।

(७०) अपना वर्तमान परिचय व मोहनिद्रामे लम्बे स्वप्न—ये सारे पदार्थ भिन्न हैं, असार हैं, मेरे स्वरूप नही हैं, इनमे लगाव रखनेका कोई प्रसग भी नही, सम्बंध भी नहीं, पर यह जीव अपने आत्मामे शीलका परिचय न पानेके कारण

इन बाह्य विषयोमे लगाव रखते है और ऐसे कुशीलमें सारी जिंदगी बिताते हैं, उसका फल यह होता है कि ससारमे जन्म-मरण करते है। अभी यही देख लो कि ये ससारी जीव कर क्या रहे है? जैसे पूछते है कि भाई आपका नाम क्या है, आप रहते कहाँ हैं और क्या काम करते है? ये तीन बातें जाननेकी इच्छा तो होती है कमसे कम। तो जरा इन संसारी जीवोंसे भी पूछो कि भाई तुम्हारा नाम क्या है, तुम कहाँ रहते हो और तुम क्या किया करते हो? तो वहाँ उत्तर यह होना चाहिए कि मैं कर्ममलीमस एक जीव हू, अपने ही प्रदेशोमे रहता हूँ और विषयकषाय विकार आदिकके ऊधमका रोजिगार किया करता हू। और इस रोजिगारका फल क्या मिल रहा है? इस ससारमे जन्ममरण। जन्मे, मरे और इस जन्ममरणके बीचकी जो जिंदगी है उसमे निरंतर कष्ट उठाया। जैसे सोये हुए पुरुषको कोई स्वप्न आये तो उस कालमे उसे वह झूठा नही मानता। जिसको स्वप्न होता है उसको उस समय स्वप्नमे देखी हुई बात एकदम सत्य प्रतीत होती है। जैसा स्वप्न आया वैसा भीतरमे हर्ष विषाद करता रहता है। तो यह तो है आखके नीदका स्वप्न। और यह १०-२०-५० वर्षोंका जो कुछ भी समय है यह है मोहके नीदका स्वप्न। जैसे उस आखकी नीद वालेको स्वप्नकी बात झूठ नही लग रही थी, जगनेके बाद झूठ लगी, सोनेके समय तो झूठ नही

लगी, ऐसे ही मोहके नींदकी ये सारी बातें—यह परिवार है, यह वैभव है, यह दूकान है, यह कमाई है, यह इज्जत है, यह प्रतिष्ठा है, ये सब बातें सच्ची लग रही हैं। जब तक मोहकी नींदमे सो रहे तब तक ही ये बातें सच्ची लग रही। जब यह मोहकी निद्रा भग हो जाती है याने ज्ञान जग जाता है, वस्तु के स्वरूपका सही ज्ञान हो जाता है कि मैं आत्मा वास्तवमें क्या हू, इस शील स्वभावका जब परिचय हो जाय तब उसे यह ज्ञात होता है कि मेरी वे सब बातें झूठ थी।

(७१) मोहनिद्राके दृष्टान्तपूर्वक मोहनिद्राके स्वप्नोंका चित्रण—एक दृष्टान्त यहां देते हैं कि किसी एक आदमीको सोते हुएमे स्वप्न आया कि मुझे राजाने १०० गायें इनाममे दी है। अब वह उन १०० गायोको बाधता है, खोलता है, उनकी सेवा करता है, खिलाता पिलाता है। उस समय स्वप्न मे वह यह तो नही समझ पा रहा कि यह सब झूठ है, स्वप्न की बात है। उसे तो सब सच लग रहा। उसी स्वप्नकी बात कह रहे वहा कोई ग्राहक गायें खरीदने पहुचा, पूछा—भाई ये गायें कितने-कितने रुपयेमे दोगे ? तो वह बोला—१०० १०० रुपयेमे। उस समय सस्ता जमाना था। सो १००-१०० रु० की बात सुनकर वह ग्राहक बोला—५०-५० रुपयेमे दोगे ? ...नही।" फिर कितने कितनेमे दोगे ?...९०-९० रु० मे। ...क्या ६०-६० रु०मे नही दोगे ?...हा नही देंगे।" फिर

कितने-कितनेमे दोगे ? " ८० ८० रु०मे ।···अगर देना चाहो तो ७०-७० रु०मे दे दो ।" नही देंगे ।···तो हम नही लेंगे। (चल दिये) अरे सुनो तो सही । ' नहीं सुनते । इसी प्रसगमे उसकी नीद खुल गई और क्या देखा कि अरे यहाँ तो कुछ नही, ये सब स्वप्नकी बातें थी, पर यह सोचकर कि करीब १४०० रु० जा रहे सो आँखें मीचकर बोलता है— अच्छा भाई लौट आवो, "७०-७० रुपयेमे ही ले लो । अब भला बताओ आंखें मीचनेसे वहां होता क्या ? कही स्वप्नमे देखी गई वे सब बातें सही तो नही बन सकती । तो जैसे स्वप्नमे यह पता नही पडता कि वह सब झूठ है, ऐसे ही मोह की नीदमे जब तक मोहके विचार और विकार चल रहे है और आत्माके वास्तविक स्वरूपका परिचय नही है तब तक लग रहा है कि बिल्कुल सच बात तो है, हमारा ही तो मकान है, हमारे ही नामसे तो इस मकानकी रजिस्ट्री हुई है, किसी दूसरेका कैसे हो सकता ? यो सब एकदम सही जच रहा, मगर वस्तुस्वरूपका ज्ञान जगे, स्वतन्त्र सत्त्वका परिचय बने, प्रत्येक द्रव्य अपनी गुण पर्यायोमे है । कोई द्रव्य किसीको नहीं भोगता । जब एक द्रव्यका दूसरे द्रव्यसे सम्बध कुछ नही है यह ज्ञात हो तब भूल कबूल होगी, आप सोचेंगे कि ऐसा श्रेष्ठ मनुष्यभव मिला । यदि यहा मोक्षमार्गकी बात न बन पाये तो धिक्कार है और बेकार है यह जीवन । उसमे क्या सार निक-

लेगा ? कुछ इन्द्रियके आराम मिल जायेंगे। जिनको कल्पित सुख दुःख होता है और उस समय जैसा कर्मोंका बन्ध होगा उसके अनुसार ससारमे जन्ममरणकी परपरा चलती है। तो अब अपना एक दृढ सकल्प बना लीजिए कि मैं इसका परिचय करके ही रहूगा कि मैं वास्तवमे किस स्वरूपमे हू। जो मेरा वास्तविक स्वरूप है उस ही को अपनाऊँ और उसीको अनुभव करूँ कि मैं यह हू।

सम्मत्तणाणदंसणतववीरियपंचयार मप्पाणं।
जलणो वि पवणसहिदो डहति पोरायणं कम्मं ॥३४॥

(७२) शीलपवनसे प्रेरित पञ्चाचाररूप अग्निसे पूर्वसंचित कर्मेन्धनोंका दहन– आत्माके उद्धारके लिए जो आचरण बताय गए हैं वे ५ प्रकारके होते है—(१) सम्यक्त्वाचार, (२) ज्ञानाचार, (३) दर्शनाचार, (४) तपाचार, (५) वीर्याचार। सम्यग्दर्शनका आचरण होना सम्यक्त्वाचरण है, सबसे निराला है, ज्ञानमात्र है, अमूर्त है, ऐसा अपने स्वरूपमे अपनेको आत्मारूप अनुभव करना कि यह मैं हूँ, यह सम्यग्दर्शन कहलाता है। ज्ञानाचार—आठ अगसहित ज्ञानका आचरण करना ज्ञानाचार है। दर्शनाचार—ज्ञानसे पहले छद्मस्थोको दर्शन हुआ करता है। इसमे पदार्थका सिर्फ प्रतिभास होता है, इस प्रकारका आचरण करना दर्शनाचरण है और तपश्चरणमे आचरण बने यह तपाचार कहलाता है और वीर्य—शक्तिरूप आचरण करना वीर्याचार है। ये ५ प्रकारके आचार आत्म को

के होते हैं। तो जैसे अग्नि जलती है और उसमे हवा लग रही तो उससे ईंधन जल जाता तो ऐसे ही ये आचरण करते हुए अन्तस्तत्त्वका आश्रय बनावे, तो इन आचरणोमे पुरानन कर्म भी सब दग्ध हो जाते हैं। आत्माका उद्धार आत्मस्वरूपके अनुसार आचरण होनेमे है। तो इन्ही आचारोको ५ विभागो मे बाँटा है। सम्यक्त्वाचार तो विपरीत अभिप्रायरहित अपने को स्वच्छ अनुभवन कहलाना है, ज्ञानाचार ज्ञानका केवल जाननस्वरूप है सो मात्र जाननस्वरूपके लिए ही उपयोग रहना यह ज्ञानाचार कहलाता है। दर्शनाचार—समस्त वस्तुविषयक जो सामान्य प्रतिभास है, जिसमे यह अमुक है, यह भी भेद नही पड़ता, जो कि अपने केवल आत्माके दर्शनरूप है, ऐसा जो आत्माका परिणाम है वह दर्शनाचार कहलाता है। तप-श्चरण तो वास्तवमे इच्छा निरोध है। अपने आपमे अपने चैतन्यस्वरूपको तपाना, वही दृष्टिमे रहना, ऐसा जो एक भीतर तपन है वह है निश्चयनयसे तपाचार, और इस ही की पुष्टिके लिए जो वातावरण बनाया जाता है अनेक प्रकारके बाह्य तपो का आचरण या अन्तरग तपका आचरण वह सब तपस्या है, ऐसे ही वीर्याचारमे आत्माके समस्त बल प्रयोगसे आत्मस्वरूप मे ही उपयोगको रमाना ऐसा जो पौरुष है वह वीर्याचार है। सो इन ५ आचारोके द्वारा पूर्वबद्ध कर्मोको जला दिया जाता है। जैसे कि अग्निसे ईंधन जला दिया जाता है और जैसे अग्निको हवा प्रेरित करती है, बढ़ाती है, उकसाती है ताकि

अग्नि पूरा काम कर सके, तो ऐसे ही आत्मामे शीलस्वभाव की दृष्टि, आत्मस्वभाव, उन पञ्चाचारोको उकसाता है, बढाता है जिसके द्वारा पूर्वबद्ध कर्म नष्ट किए जाते है, सो यहाँ यह समझना कि शीलके बिना निर्वाण नही हो सकता। शीलका अर्थ है आत्माके स्वभावरूप अपने आपको मनन करना।

णिद्दड्ढअट्ठकम्मा विसयविरत्ता जिदिंदिया धीरा।
तवविणयसीलसहिदा सिद्धा सिद्धिं गदिं पत्ता ॥३५॥

(७३) विषयविरक्त एवं इन्द्रियविजयीका सिद्धपर्याय पानेका अधिकार—जो पुरुष विषयोंसे विरक्त हैं, जिन्होंने इन्द्रियपर विजय प्राप्त किया, जो प्रत्येक परिस्थितिमे धीर रहते है, तपश्चरण विनय और शीलसे जो युक्त हैं, जिन्होने अष्ट कर्मोंको नष्ट कर दिया है, वे पुरुष सिद्ध अवस्थाको प्राप्त होकर सिद्धभगवान कहलाते है। जीवपर बडा कलंक है विषयरमण। अत्यन्त भिन्न पदार्थ है, विषयभूत पदार्थ भी अत्यत भिन्न है, इन विषयोमे इस जीवको प्रीति होती है, रमण होता है, वही इसके उपयोगपर चित्रित रहता है तो यह तो इस भगवान परमात्माके लिए बडा कलंक है। विषयोंसे विरक्ति पाये बिना कोई धर्ममार्गमे जरा भी नही चल सकता, क्योंकि विषयोसे प्रेम रखने वाला पुरुष ऐसा जकडा हुआ है कि वह अपनेमे निर्भारता या प्रसन्नता पा नही सकता। अभी व्यवहारमे ही कोई कामवासना वाले पुरुषका जो कि

किसी समय सुख मान रहा है या अन्य इन्द्रियविषयोके भोगमें खानेमे, सूँघनेमे, देखनेमे, सुननेमे सुख मान रहा है और उस सुखमे थोडा चेहरा भी खिल जाता है, एक तो उसका फोटो लीजिए और एक जो विषयोंमे नही रमता, विषयोसे विरक्त है और शुद्ध आचार-विचारसे रहता है उसे भी आनन्दके कारण चेहरेपर मुस्कान रहती है। एक उसका फोटो मिलायें तो दोनो ही फोटोमे आप बडा ही अन्तर पायेंगे, वह प्रसन्नता सुन्दरतामे, विषय सुख वालेमे नही पायी जा सकती। तो विषयोसे विरक्त होना यह धर्मार्थी पुरुषका सर्वप्रथम कर्तव्य है, सिद्धिको प्राप्त करनेका अधिकारी जितेन्द्रिय है। जिसने इन्द्रियको जीता है, विषयविरक्तिका और जितेन्द्रियका परस्पर सबध है, जिसने इन्द्रियपर विजय पायी, वही विषयोसे विरक्त हुआ है, वही इन्द्रियपर विजय पायगा। ये दोनो परस्पर एक दूसरेके साध्य साधक हैं। तो जो पुरुष जितेन्द्रिय हुए हैं वे ही सिद्ध अवस्था प्राप्त करनेके अधिकारी है।

(७४) धीर व तपविनयशीलसहित जीवोंको अष्टकर्मरहित होकर सिद्धपर्यायका लाभ—धीर वीर पुरुष सिद्ध अवस्थाको पानेके अधिकारी है। वीरता होनेका कारण विषयविरक्ति और जितेन्द्रियपना है, तो विषयविरक्ति और जितेन्द्रियत्व तो कारण है और धीर बनना यह उसका फल है। धीर शब्दका अर्थ है जो बुद्धिको देवे सो धीर। धी मायने बुद्धि और र का

अर्थ है देने वाला । रा धातु देने अर्थमें आती है, और धी मायने बुद्धि, तो धीं राति इति धीरः, जो बुद्धिको दे उसे धीर कहते हैं, ऐसी अवस्था, ऐसी स्वच्छताकी दशा कि जिसमे बुद्धि काम करे, बुद्धि विचार न बिगडे, उस अवस्थासे युक्त पुरुषको धीर कहते है । अब बुद्धि न बिगडे, ज्ञान सही काम करता रहे तो वह पुरुष बन सकेगा ऐसा कि जो विषयोंसे विरक्त हो और इन्द्रियका विजयी हो । तो जो धीर वीर पुरुष हैं वे सिद्ध अवस्था पानेके अधिकारी होते है । जिन पुरुषोने तपश्चरणका आदर किया है यथाबल अन्तरग बहिरग तप करते हैं, अपने आपको इच्छारहित अनुभव करते है, वह तपसहित कहलाते हैं । जिनको अपने ज्ञानस्वभावकी प्रीति है और ज्ञानस्वभावकी ओर उपयोग जिनका झुकता है वे पुरुष वास्तवमे विनयशील हैं और जिन्होने ऐसे ज्ञानस्वभावोपयोगके बलसे आत्मविजय पाया है वे ही व्यवहारसे व निश्चयसे विनयशील बन पाते हैं, अन्यथा विनय बनावटमे भी हुआ करती है, पर विना बनावट की विनय, वास्तविक विनय उसी पुरुषके सम्भव है जिसने अपने ज्ञानबलमे विनय किया है । जो शीलसहित पुरुष है, जिनका ध्यान अपने आत्माके सहज ज्ञानस्वभावकी ओर रहता है वे यथार्थ तपविनयके पात्र है, सो जो तपश्चरण सहित है, विनयसहित है वह पुरुष सिद्धअवस्थाको प्राप्त होकर सिद्ध कहलाता है । सिद्धदशा अष्ट कर्मोंके नष्ट हुए बिना नही प्राप्त

होती। उनमे ४ घातिया कर्म तो अरहंत अवस्थामे नही हैं। अरहत होनेके लिए पहले ही नष्ट कर दिया गया था, शेष चार अघातिया कर्म जो आत्माके गुणको तो नही घात रहे, पर आत्मगुण घातनेके सहायक नोकर्माश्रयभूत जैसा उनका फल रहता था शरीरादिक, वे शरीरादिक अब भी है। अघातिया कर्मोंका उदय चल रहा है, उनका उस १४वें गुणस्थानके अत मे विनाश हो जाता है। यो अष्ट कर्मोंका नाश होनेपर शरीर-रहित होकर वे सिद्ध भगवान कहलाते है। तो ऐसा सिद्ध होना आत्मशीलका प्रताप है। आत्माके शील बिना सिद्ध पद की प्राप्ति असम्भव है।

लावण्णसीलकुसलो जम्ममहीरुहो जस्स सवणस्स।
सो सीलो स महप्पा भमित्थ गुणवित्थरं भविएं ॥३६॥

(७५) शीलयुक्त गुणी महात्मावोकी प्रशंस्यता—ऐसे मुनि महाराजका गुण समस्त लोकमे विस्तारको प्राप्त होता है जो मुनि महाराज सर्व लोककी प्रशसाके योग्य है। दुनियामे यश उसीका ही तो गाया जाता जो कि प्रशंसाके योग्य होता है, सो प्रशसाके योग्य मुनि कौन है ? जिसका शील उत्तम है, स्वभावदृष्टि निज आत्मरमणमें चल रही है ऐसा उपयोग वाला आत्मा शीलको प्रकट करता हुआ प्रशसाके योग्य होता है। तो कोई मुनि चाहे सर्वांग सुन्दर हो, वचन, कायकी चेष्टा भली हो तो भी प्रशसा उसकी होती है जिसका शील उत्तम हो। जैसे

वृक्षकी शाखा पत्ते फूल फल सुन्दर हो और छायासे भी सहित हो तथा सर्व लोगोका बराबर उपकार करने वाला है याने उस वृक्षसे, सज्जन लोग भी फल खाये, दुर्जन लोग भी फल खायें, सज्जन लोग भी उसकी छायामे बैठकर विश्राम लें और दुर्जन लोग भी, वृक्ष सबका समान उपकार करता है तो वह वृक्ष प्रशसनीय होता है। इसी तरह जिसमे अनेक गुण हो, जाति, रूप, कुल, अवस्था, ज्ञान आदि सभी गुण उत्तम हो और रागद्वेषरहित सर्वका समान उपकारक हो और शील गुणसे युक्त हो तो वह महात्मा सर्व लोगो द्वारा प्रशसाके योग्य है। सो इसमे भी उसके शीलकी महिमा समझिये। हम आपका उद्धार अपने आपके स्वभावकी दृष्टि किए बिना, आत्मस्वभावमे रमे बिना कभी सम्भव नही है। यह बहुत बडी भारी विपत्ति छायी है जो इस जीवकी दृष्टि जड़ पदार्थोंमे रमती है। यद्यपि थोडे ही दिनोमे इस भवका भी फैसला होना है, मरण होगा, सब यही रह जायगा। कुछ साथ न देगा, लेकिन जब तक जीवित है, यह मोही प्राणी अपनी उपयोग भूमिपर इन जड पदार्थोंकी छाया लादकर भारसहित होकर समय बुरी तरह गुजार रहा है। सो कुछ अपनेको चेतना चाहिए और कुछ मुख मोडना चाहिए एक दृढ कदमके साथ। एक ही निर्णय और विश्वासके साथ कि हमको तो ससारसे हट कर केवल सिद्ध अवस्था पानी है और उसीके लिए ही

हमारा सब कुछ त्याग रहेगा, समर्पण रहेगा, उसीके लिए ही ध्यान रहेगा, ऐसी अतीव दृढताके साथ जिसका स्वभावकी ओर आकर्षण होगा वह पुरुष मुक्ति अवस्थाको प्राप्त कर सकता है।

णाणं झाण जोगो दसणसुद्धीय वीरियायत्तं।

सम्मत्तदंसणेण य लहंति जिणसासणे बोहिं ॥३७॥

(७६) ज्ञान ध्यान योग व दर्शनशुद्धिकी आत्मकीय तन्त्रता होनेसे शीलमहिमाकी प्रकटता—ज्ञान, ध्यान, योग और दर्शनशुद्धि ये वीर्यके आधीन हैं। जैसा आत्मबल है वैसा ही इस ज्ञान, ध्यान आदिकको करनेमे समर्थता है। आत्मबल शीलस्वभावके आश्रयसे ही बनता है। इन्द्रियपोषण, शरीर-पोषण आदिक प्रयत्नोसे तो आत्माका बल हीन होता है, सो आत्मबल बढे उसमे भी महिमा शीलको है, आत्मशीलके आ-लम्बनके प्रतापसे वह सामर्थ्य बढती है जिससे यह जीव ज्ञान मे प्रकृष्ट बनता है। जैसे लोग सोचा करते हैं निरन्तर कि ऐसा काम करो जिसमे वैभवका सचय हो, धन बढे, कोई न कोई व्यापारकी, व्यवसायकी बात सोचा करते है, पर यथार्थ-तया सोचा जाय तो आत्माका व्यापार, व्यवसाय, कमाई, केवल यही है कि वह आत्माके शीलका आलम्बन करे, स्वभावको ही दृष्टिमे ले। ध्यानकी सिद्धि भी आत्मवीर्यके आधीन है। ध्यान कहते हैं एक विषयपर ज्ञानका ज्यादह देर टिकाये रहना, सो ज्ञानमे जैसे, आत्मबलका आश्रय है तो ध्यानमे भी

आत्मबलका ही आश्रय है। जो पुरुष रागद्वेषसे रहित होगा वह ध्यानमे सफल होगा। ध्यानसे चलित करने वाला है रागद्वेषभाव, और रागद्वेष भाव उस ही के मिटता है जिसने रागद्वेषरहित आत्माके चैतन्यस्वभावमे रुचि की है कि मैं यह हूं। बाहरमे जिसका जो कुछ भी होता हो उससे मेरे आत्मामे परिणमन नही होता। मैं क्यो परपदार्थोंके विषयमें विचार बढाकर अपने आपको बलहीन करूं ? रागद्वेष दूर करके आत्मा का वीर्य बढ़ायें और फिर वीर्यके पूरे प्रयत्नसे ध्यानकी सिद्धि जरूर कुछ देर तक बनायें, तो ऐसे ध्यानकी सिद्धि आत्मवीर्यके आधीन है। योगका अर्थ समाधि लेना है, समता परिणाममे रहना है, यह साधन भी आत्मवीर्यके आधीन है। जो पुरुष जितना अपनेको ज्ञानमात्र ही अनुभव करके धीर रहता है उसके ही यह सब योग बनता है। तो योगके बननेमें भी एक शीलका ही आलम्बन रहा। यहां भी शीलकी ही महिमा प्रकट हो रही है। सम्यग्दर्शनका शुद्ध परिणमन ८ अगसहित २५ दोषरहित सम्यक्त्व परिणामका होना यह आत्मवीर्यपर निर्भर है। अपने आपके ज्ञानस्वभावकी लीनतामे निश्चयतः आगे सम्यक्त्वके अग आ जाते है। इसी प्रकार २५ दोषोका टलना वह वहां अपने आप हो रहा है। तो ऐसा सम्यक्त्वरूप पौरुष आत्मवीर्यके आधीन है। सो यह सब अपनी शक्तिको न छिपाकर बडी लगनपूर्वक ज्ञान, ध्यान, योग और दर्शनशुद्धिको करना, इससे रत्नत्रयकी प्राप्ति होती है।

(७७) ज्ञानमात्र अन्तस्तत्त्वकी भावनामें आत्मशीलका विकास—आत्मामे आत्माको ज्ञानमात्र स्वच्छ स्वरूपमे निहारनेसे रत्नत्रयकी प्राप्ति होती है और इसीसे ही ध्यानादिक भी यथाबल होते ही रहते हैं। तो समस्त शक्तियोके बढानेमे आत्माका शील मूल कारण है। सो इस प्रतापको सुनकर शील की महिमाका अदाज कीजिए। जो भी पुरुष भगवान बने हैं वे आत्माके इस शीलका आलम्बन लेकर बने हैं, सो रत्नत्रय आत्माका स्वरूप है, अभेददृष्टिसे आत्माका शील आत्माका स्वरूप है, अपने द्वारा अपनेमे सुगमतया प्राप्त होता है, यह दृष्टि जिसने पायी वह जीव अलौकिक है। आत्मशीलपर ध्यान रखने वाले, ज्ञान रखने वाले पुरुष निरन्तर निर्मल प्रसन्न रहा करते हैं। तो यह सब आत्माके स्वभावका आलम्बन है। इसके लिए अपने आपमे ऐसा मनन कीजिए कि मैं अमूर्त हू आकाशवत् निर्लेप हू, ज्ञाताद्रष्टा स्वरूपमात्र हूँ। मेरे स्वरूपमे विकार नही है। वह तो केवल अपने स्वरूपास्तित्वमय है, सो विशुद्ध चैतन्यस्वभावमात्र मैं आत्मा परिपूर्ण हू। ऐसा मनन करना, इस ही ओर ध्यान रखना यह है आत्माके शीलको प्रकट करनेका काम। तो हम सबको ऐसी भावनाओमे रहना चाहिए अर्थात् शीलस्वभावकी निरतर उपासना करना चाहिए, इस सुकुमार चिकित्सा द्वारा ससारके विकट जन्ममरण सकट समाप्त हो जायेंगे। सो इस शीलपाहुडके प्रकरणमे यह आचा-

योंका उपदेश है कि हे भव्य जीवो ! तुम अपने इस परमार्थशील का आश्रय करो, इस ही मे उपयोग डुबोकर, मग्न कर अपने आपको कृतार्थ अनुभव करो।

जिणवयणगहिदसारा विषयविरत्ता तपोधणा धीरा ।
सीलसलिलेण ण्हादा ते सिद्धालयसुहं जंति ॥ ३८ ॥

(७८) जिनवचनगृहीतसार आत्मावोंका सिद्धालयलाभ लेनेके लिये अधिकार--सिद्धात्माके आनन्दको कैसे जीव प्राप्त करते हैं, इसका वर्णन इस गाथामे किया गया है। जिन्होंने जिनेन्द्रप्रणीतवचनोसे सार ग्रहण किया है, जो विषयोसे विरक्त हैं, तपस्वी हैं, धीर है ऐसे पुरुष शीलरूपी जलसे स्नान किए हुए मोक्षके सुखको प्राप्त करते है। इससे सर्वप्रथम कहा गया है कि जिन वचनोसे जिन्होने वस्तुका यथार्थस्वरूप जाना है वे पुरुष सिद्धालयको प्राप्त होते है। तो जीवोके कल्याणका प्रारम्भ जिन वचनोसे होता है, कुछ सुने तब उसपर मनन चले और आत्मविकासकी उन्नति हो तो सर्वमूल जिनागम रहा, जिससे सिद्ध होता कि सर्व कल्याणका मूल प्रारम्भ स्वाध्याय से चलता है। तो जिन वचनोमे जो वस्तुस्वरूप जाना उसका सार ग्रहण किया गया है। सार क्या है ? अपने शुद्ध स्वरूपकी प्राप्ति। धर्ममार्गमे जो कुछ भी ज्ञान है, चारित्र है, उस सब का उद्देश्य है शुद्ध स्वरूपकी प्राप्ति होना। आत्माको मोक्ष चाहिए तो मोक्ष अवस्थामे जो कुछ यह जीव रहता है, बनता

है उसका तो ज्ञान चाहिए। किसी पुरुषको किसी गाँवमे जाना है, गाँवको यदि देखा हुआ है तो पूरा चित्रण उसके उपयोगमें है तब तो जा रहा है। नही देखा है तो सुन-सुनकर उसका कुछ ज्ञान है चित्तमे तब जा रहा है। मोक्ष जाना है तो कुछ तो निर्णय होना चाहिए कि मोक्ष क्या चीज है, मोक्षमे आत्मा किस तरह रहता है, वहाँ क्या बर्तता है ? मोक्षमे आत्मा अकेला जितना इसका सहज स्वरूप है, जो कुछ स्वरूप सत्त्व है मात्र वही रहता है, उसके साथ अन्यका सयोग नही है, ऐसी जो अत्यन्त विविक्त अवस्था है उसका नाम मोक्ष है, तो मोक्षमे रहा यह आत्मा ज्ञानमात्र, अकेला, अपने स्वरूपास्तित्व वाला है, तो वहाँ अनत आनन्द है। इसका कारण यह है कि आत्माका स्वरूप आनन्द है, अनुपम आनन्द है, आनन्दसे रचा हुआ है। ज्ञानस्वरूप यह आत्मा ज्ञानके अविनाभावी आनन्द से, आनन्दके अविनाभावी ज्ञानसे निश्चित समृद्ध है, वही सिद्ध अवस्थामे व्यक्त हुआ है। तो जो सिद्ध अवस्थामे आत्मा प्रकट हुआ है, तो जो सिद्धावस्थामे आत्मा प्रकट होता है वह उस स्वरूप वाला सब कुछ अभी भी यहाँ है, अनादिसे ऐसा ही है, किन्तु कर्म और विकारके कारण यह स्वरूप ढका हुआ है, पर मोक्ष अवस्थामे कोई नई बात बनती हो या कोई नई चीज इसमे आती हो सो बात नही है। जो है वही पूर्ण सिद्ध हो गया, इसीके मायने है मोक्ष। तो मोक्षमे क्या है ? केवल ज्ञानज्योतिर्मय आत्मा, जिसके साथ न विकार

है, न कर्म है, न शरीर है, तो ऐसा ही स्वरूप इस समय यहाँ दिखना अपनेमे कि मैं स्वरूपास्तित्वसे जो हू सो वही उतना ही मात्र हू। उस स्वरूपमे विकार नही, कर्म नही, शरीर नही, शरीर और कर्म ये तो अत्यन्त जुदे सत् पदार्थ हैं, उनका तो मेरेमे सद्भाव कैसे हो सकता है ? अब रहे विकार, सो ये विकार मेरे स्वरूपतः नही उत्पन्न हुए, किन्तु आत्मामे ऐसी योग्यता है कि कर्मविपाकके बँधे हुए कर्मोका अनुभाग जैसा उदित होता है और जो कुछ गडबडी विकार उन कर्मप्रकृतियो मे होती है वहाँ चित्रित हो जाती है। फिर यह जीव चित्रित होनेके कारण एक ज्ञानमे धक्का पाता है जिसके कारण स्वरूप से विचलित होकर यह बाह्य पदार्थोंमे लग जाता है। तो ये विकार आत्माके स्वरूप नही हैं, किन्तु कर्मोंके विकारको अपनानेकी बात है। तो स्वरूप इस विकारसे भी जुदा है, तो ऐसे अविकार, शरीररहित, कर्मरहित, ज्ञानमात्र अपने स्वरूपको निरखना यह ही सारका ग्रहण करना है। अपने सार कारण-समयसारमे उपयोग रमायें, सर्वसिद्धि होगी।

(७९) कारणसमयसारको ग्रहण कर विषयविरक्त हुए आत्मावोका मोक्षमार्गपर अधिकार—जिन जीवोने जिन वचनो के प्रसादसे शुद्ध आत्मतत्त्वके सारको ग्रहण किया है वे ही पुरुष विरक्त होते है। विषयोमे लगा रह कोई, तो मोक्षमार्ग मे कैसे गमन कर सकता है ? वह तो विषयोमे ही लम्पट हो

गया। तो आत्मस्वरूपमे पहुच पानेके लिए विषयोकी गिरफ्तारीसे निकलना अत्यावश्यक है, सो विषयोसे विरक्ति ज्ञानपूर्वक होती है। वास्तविक ज्ञान वह है जिस ज्ञानमे ज्ञानस्वरूप आत्मतत्त्व ज्ञात होता हो और विषयोसे विरक्ति रहती हो। यदि ये दो बातें नही हैं कि ज्ञानस्वरूप अन्तस्तत्त्वका परिचय होना, और विषयोसे विरक्ति होना, तो वह ज्ञान ज्ञान नही कहलाता। तो उस सहज ज्ञानस्वरूपको ग्रहण करनेके कारण जीवके विषयविरक्ति होती है। तो जो विषयोसे विरक्त है वे ही पुरुष मोक्षमार्गमे बढ सकते हैं। ज्ञानका और विषयविरक्तिका परस्पर प्रगति कराने वाला सम्बन्ध है। ज्यो-ज्यो विषयोसे विरक्ति बढती है त्यो-त्यो यह आत्मा अपने सारभूत ज्ञानमात्र अतस्तत्त्वमे मग्न होता है, जगता है, प्रकाश पाता है और जैसे-जैसे ज्ञानमे सहज ज्ञानस्वभाव प्रकाशित होता है वैसे ही वैसे विषयविरक्ति वढती जाती है। तो जो पुरुष ज्ञानस्वरूपका भान कर चुके है वे विषयविरक्त होते है और विषय विरक्त पुरुष ही मोक्षसुखके अधिकारी होते हैं।

(८०) जिनवचनोसे आत्मसार विदित कर विषयविरक्त आत्मावोका तपस्वी व धीर होकर मोक्षमार्गमे अधिकार—जिनवचनोसे अतस्तत्त्वका सार ग्रहण कर विषयोसे जो विरक्त हुए हैं वे ही पुरुष तपश्चरणको स्वीकार करते हैं और जो शरीरमे आसक्त हैं, मोही हैं वे पुरुष तपश्चरण क्यो करें?

वे तो शरीरमे आत्मबुद्धिके कारण जिस प्रकार वे आराम समझते हो उस प्रकारकी कषायमे रहेगे। तो तपश्चरणका कारण है विषयोसे विरक्ति। तो जो पुरुष विषयोसे विरक्त होते है वे तपश्चरणको स्वीकार करते है। तपश्चरणमे इच्छाओका निरोध है, आत्माके ज्ञानस्वरूपके आलम्बनका बल है। और इस बल प्रयोगसे वह अपनेमे चैतन्यस्वरूपका प्रताप पाता है। तो ऐसे तपस्वी जन मोक्षसुखके अधिकारी होते हैं। जो पुरुष जिनागमसे अन्तस्तत्त्वके सारको प्राप्त कर चुके है और इस ही कारण विषयोसे विरक्त हुए है और इस कारण तपश्चरणमे लवलीन हो रहे हैं वे पुरुष धीर होते हैं। जिनका ज्ञान अविचलित निष्कम्प प्रसन्नताको लिए हुए रहता हो उन पुरुषोको धीर कहते है। धीर पुरुष क्षमाशील होते हैं, वे किसी के द्वारा किए गए उपद्रवपर कुछ भी चित्तमे क्रोधभाव नहीं लाते, क्योकि उन्हे सर्व मायाजाल दिख रहा है। उपसर्ग भी माया है, उपसर्ग करने वाला भी मायारूप है, और कोई यदि उपसर्गका निवारण करे तो वह भी एक मायारूप है। ऐसा बाह्य पदार्थका सम्यक् बोध रहनेके कारण वह पुरुष धीर रहता है, ऐसे धीर पुरुष मोक्षसुखको प्राप्त करते हैं।

(८१) गृहीतात्मसार विषयविरक्त तपोधन धीर पुरुषोंको शीलसलिलसे स्नात होकर ही सिद्धावस्थाकी प्राप्ति—जिन पुरुषोमे इतनी योग्यता आ चुकी है कि अन्तस्तत्त्वका सार

ग्रहण कर चुके है, विषयोसे विरक्त हुए हैं, तपस्वी हैं, धीर हैं वे पुरुष शीलरूपी जलसे स्नान कर चुके हुए मोक्षके सुखको प्राप्त करते है। शीलजल क्या है ? आत्माका वह स्वच्छ बढ़ा हुआ सहज ज्ञानप्रकाश। उस ज्ञानप्रकाशमे जिसने अपने उपयोगको नहलवा दिया है, निर्मल कर दिया है ऐसे स्नातक पवित्र आत्मा मोक्षसुखको प्राप्त करते हैं। ५ प्रकारके निर्ग्रन्थोमे अंतिम निर्ग्रन्थका नाम स्नातक शब्द दिया है। स्नातकका अर्थ है—अरहत भगवान। जो केवल ज्ञानोपयोगसे निरतर रहते हैं निर्विकार ज्ञानमात्र, जिनका प्रकाश लोकालोकव्यापक है, वे ज्ञानसलिलसे स्नान किए हुए कहलाते हैं, ऐसे पवित्र प्रभु सिद्धालयसुखको प्राप्त करते है।

सव्वगुणखीणकम्मा सुहदुक्खविवज्जिदा मणविसुद्धा।
पप्फोडियकम्मरया हवंति आराहणा पयडा ॥ ३९ ॥

(८२) क्षीणकर्मा सुखदुःखविवर्जित पवित्र आत्मावोका सफल आराधनातन्त्र— मोक्षमार्गके कर्तव्यमे मरण समयमे सल्लेखना करनेका विधान है। सल्लेखनाका अर्थ है कषायभावको कृश कर देना। कषायको कृश करनेका जो पुरुष पुरुषार्थ करता है उसके काय कृश होता ही है। जहां क्रोध, मान, माया लोभको क्षीण कर दिया गया और इसी कारण आहार आदि के प्रति रुचि न रही, आहारका परित्याग भी किया गया वहां काय कृश होता ही है, किंतु काय कृश होनेकी स्थितिमे भी भव्य

पुरुष प्रसन्न रहा करते है । तो ऐसे मूल गुण और उत्तरगुण के द्वारा जिन्होने कर्मोंको क्षीण किया है वे महात्मा सल्लेखना को भली प्रकार निभाते है । सल्लेखनामे चार प्रकारकी आराधनाका उपदेश है—(१) दर्शनाराधना, (२) ज्ञानाराधना, (३) चारित्राराधना और (४) तपाराधना । इन आराधनाओं के प्रतापसे कर्म क्षीण होते हैं । तो पहले सम्यग्दर्शनसहित मूल गुण और उत्तरगुण होनेसे कर्मकी निर्जरा होती है जिसमे कर्मोंकी स्थिति और कर्मोंका अनुभाग क्षीण हो जाता है । कर्मकी स्थिति और अनुभागके क्षीण होनेसे यह जीव सुख दुःखसे रहित हो जाता है । सुख दु.ख मनकी कल्पनापर आधारित रहते हैं । जब इस जीवको निज सहज ज्ञानस्वरूपकी दृष्टि नही रहती है, सहज ज्ञानस्वभावका जिसको परिचय नहीं हुआ है वह पुरुष अपने उपयोगको कहाँ रमाये ? कही न कही रमानेका स्वभाव है इस जीवका । तो निज स्वरूपका तो परिचय नही और विषय ऽसंगका परिचय अनादिसे चल रहा है तो यह जीव उन विषयसाधनोमे चित्त रमाता है, किन्तु जिसने सम्यक्त्व पाया और उस सम्यक्त्व ज्ञानके प्रतापसे कर्मोंको क्षीण किया, उनके निरंतर आत्मस्वभावमे दृष्टि रहनेसे या अपनेको चैतन्यस्वभावमात्र अनुभवनेसे सुख दुःख वहाँ नही हुआ करते । तो जो श्रमण सुख दु खसे रहित हैं उनके ही चार प्रकारकी आराधना बनती है । जहाँ रागद्वेष नही है,

सुखका लगाव जहाँ नहीं है वहाँ मन पवित्र होता है। जिसका मन पवित्र है, यथार्थस्वरूपको समझनेके कारण सर्व बाह्य पदार्थोंमे विरक्त है वह पुरुष विशुद्धिमे प्रगति करता रहता है। सो ये विशुद्ध मन वाले जीव कर्मरजको तोडकर, हटाकर वास्तविक ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तपकी आराधनाको प्राप्त होते हैं।

(८३) मोक्षमार्गमे प्रगतिका साधारण विधान—भव्य जीवोकी कैसे प्रगति होती है ? सुनिये, इस जीवने सम्यक्त्व पहले पाया, उससे हुई विषयविरक्ति, फिर वह निष्परिग्रह बना, सुख दुःखसे रहित बना, आत्माके सहज ज्ञानस्वरूपका ध्यान बढा। जब श्रेणी चढकर इसका उपयोग विशुद्ध होता है तो श्रेणीमे कषायका उदय अव्यक्त है। सो कषाय अव्यक्त होनेसे सुख दुःखकी वेदना वहाँ भी नही चलती, पीछे मन विशुद्ध होनेसे क्षायोपशमिक ज्ञानके द्वारा यह ज्ञेयसे ज्ञेयाकार परिवर्तन करता रहता है। रागद्वेष न होकर भी चूंकि अभी वीतराग नही हुआ, अव्यक्त राग है तो क्षायोपशमिक ज्ञानके कारण यह उपयोग किसी एक ज्ञेय पदार्थपर टिककर नही रहता, सो यह ज्ञेयान्तर जाननरूप विकल्पमे रहा, लेकिन इस क्षायोपशमिक ज्ञानकी विशेषताको उस ज्ञेयान्तर परिणमनको भी जब मेट देते हैं, तब एकत्ववितर्क अवीचार नामका शुक्लध्यान १२वें गुणस्थानमे होता है। फिर अन्तमे मनका विकल्प सब खत्म हो जाता। अब सज्ञी भी न कहलायेंगे, १२वें गुणस्थानके अन्तमे और १३वें गुणस्थानके प्रारम्भमे वहाँ केवल-

ज्ञान होता है। जब तक यह मन कार्य करता है तब तक केवलज्ञानी नहीं बनता, मनका कार्य जहाँ समाप्त होता, मन भी शान्त हो जाता वहाँ वीतरागके केवलज्ञान प्रकट होता है, केवलज्ञान होते ही केवलदर्शन, अनन्तसुख, अनन्तशक्ति सब एक साथ हो जाते हैं। तो वहाँ आराधना पूर्ण हुई सो ऐसे जो परम शरीरी हैं वे आराधना प्रकट करके मोक्ष प्राप्त करते हैं और जिन गृहस्थजनोंकी आराधना एक देश हो पाती है वे उस आराधनाके प्रतापसे स्वर्गमे जन्म लेते हैं, सागरोपर्यन्त सुख भोगते हैं और वहाँसे चलकर मनुष्यभवमे आराधना सपूर्ण कर लेते है, यो जो भव्यात्मा सिद्धालयको प्राप्त होता है वह सब शीलका प्रताप है।

अरहंते सुहभत्ती सम्मत्तं दंसणेण सुविसुद्धं।
सील विसयविरागो णाणं पुण केरिसं भणियं ॥४०॥

(८७) परमगुरुभक्ति सम्यक्त्वविशुद्धि विषयविरक्ति सहित शीलोपासनासे ज्ञानकी मंगलरूपताका कथन करके अन्तिम मंगलरूप गाथावतार—अरहत भगवानमे शुभभक्ति होना सम्यक्त्व है। सम्यक्त्व यद्यपि विपरीत अभिप्रायरहित आत्माका परिणाम कहलाता है, पर यह सब जिनागमसे स्वाध्याय कर कर सम्यक्त्व प्राप्त हुआ है, सो इस आगमके प्रतापसे यह बढ सका और वह आगम जिनके मुखसे प्रकट हुआ उन अरहंत जिनेन्द्रमे भक्ति न हो तो उसका सम्यक्त्व कैसा ? तो जिनको सम्यक्त्व प्राप्त हुआ है और चारित्र धारण
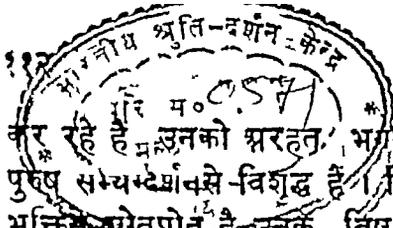
कर रहे है उनको अरहत भगवानमें भक्ति होती है और वे पुरुष सम्यग्दर्शनसे विशुद्ध हैं। जिनका ज्ञान सम्यग्दर्शनसे शुद्ध भक्तिसे ओतप्रोत है उनके विषयोसे विराग होता है और विषयोसे विरक्त होना अर्थात् ज्ञाता द्रष्टा मात्र रहना यही शील कहलाता है। सो अरहत भगवानकी भक्तिरूप तो सम्यक्त्व है और विषयोसे विरक्त होना शील है और यही सब मिलकर ज्ञान है। यदि ज्ञानमे स्वच्छता, विषयविरक्ति नही है तो वह कैसे ज्ञान है ? सो ये ज्ञान भी अपने सम्यग्ज्ञान नामक शील के प्रतापसे प्राप्त होते है। आत्मा विषयोसे विरक्त हो और सहज ज्ञानस्वभावके प्रति झुका हो तो उसके ज्ञानको सही ज्ञान कहते हैं। तो सम्यक्त्व और शीलके सम्बन्धसे ज्ञानकी बढाई है। तो यह सब शीलकी महिमा ही तो बढा रहा है। शील नाम स्वभावका है। आत्माका स्वभाव शुद्ध ज्ञानदर्शन है। सो कर्म आवरणके हटनेका निमित्त पाकर निर्विकार होता हुआ उस शीलस्वभावको विकसित करता है, ऐसे इस शीलकी प्रशसा करना यही इस ग्रन्थमे अन्तिम मगल है। यह शील-पाहुड नामक ग्रथ इस गाथाके साथ समाप्त हो रहा है, इस अतिम गाथामे शीलकी महिमा बतायी है कि शील बिना ज्ञान ज्ञान नही है। शीलजलसे पवित्र हुआ ज्ञान ही पारमार्थिक ज्ञान कहलाता है, ऐसे ज्ञानस्वभावका ज्ञानरूप पवित्र ज्ञान शील नित्य विकसित हो जिसके प्रतापसे आत्मा सदाके लिए ससारके सकटोसे छूटते है और अनन्त आनन्द प्राप्त करते है।

॥ शीलपाहुड प्रवचन समाप्त ॥